1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI No. MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-2, अंक-6, जून - जूलाई 2019 ₹ 25/-

कला समय

कला, संस्कृति और विचार की द्वैमासिक पत्रिका

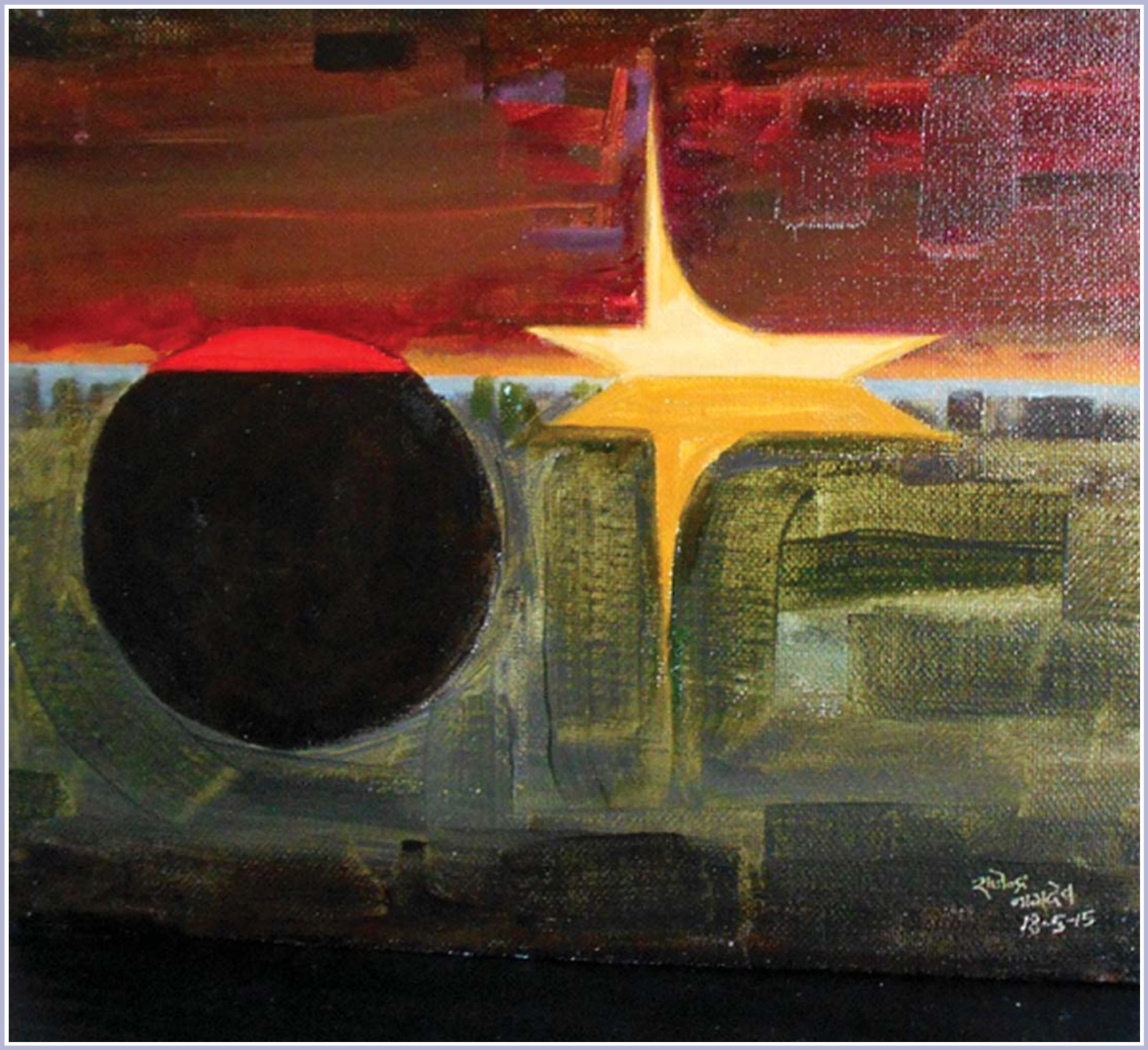

विशेष : संसार का पहला नाटक...

राधावल्लभ त्रिपाठी

संपादक
भँवरलाल श्रीवास

कला समय समृद्ध हाथों में...

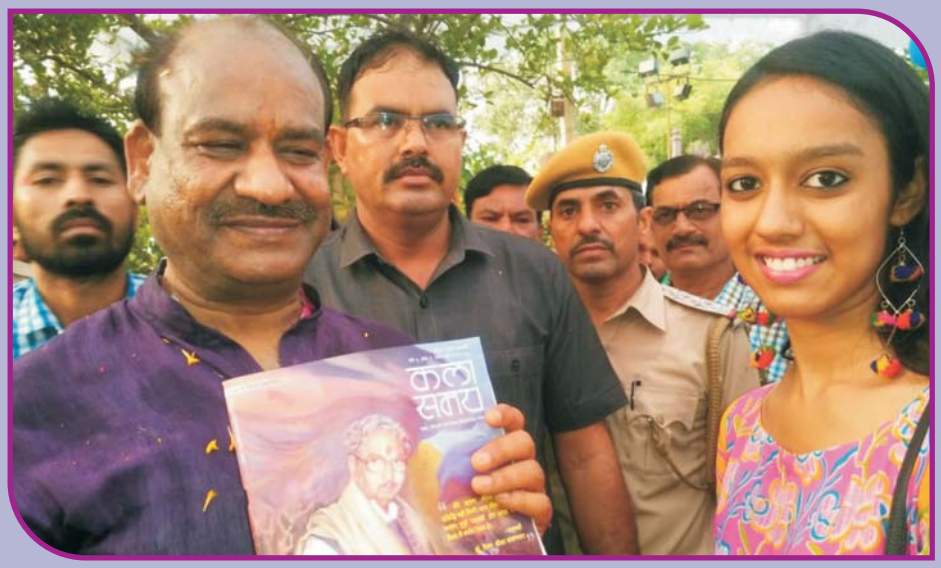

दिनांक 21 जुलाई 2019 को लोक सभा अध्यक्ष माननीय ओम बिरला जी कोटा पहुँचने पर कला समय का डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर विशेषांक कि प्रति भेंट करते हुए राजस्थान की सांस्कृतिक प्रतिनिधि आस्था सक्सेना और बेटी बचाओं-बेटी पढ़ाओं अभियान की ब्रांड एंबेसडर

विख्यात साहित्यकार, आलोचक डॉ. धनंजय वर्मा को कला समय भेंट करते हुये कला समय के संपादक भँवरलाल श्रीवास एवं वरिष्ठ साहित्यकार कला समय के परामर्श सदस्य श्री लक्ष्मीनारायण पयोधि।

केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी दिल्ली के संगीत विभाग के उपसचिव श्री राजूदास जी को कला समय पत्रिका भेंट करते हुये पं. विजय शंकर मिश्र। संगीत नाटक अकादमी के महत्वाकांक्षी कार्यक्रम श्रेष्ठ भारत संस्कृति समागम जो गुवाहाटी में सम्पन्न हुआ था। उसकी सचित्र समीक्षा इस पत्रिका में पं. विजय शंकर मिश्र ने लिखी। श्री राजूदास जी को यह पत्रिका बहुत पंसद आई है।

1998 से निरंतर प्रकाशित
RNI NO. MPHIN/2017/73838

कला समय पत्रिका अब वेबसाइट पर उपलब्ध
www.kalasamaymagazine.com

ISSN 2581-446X
(वर्ष : 21+2) पूर्णांक-99,
वर्ष-2, अंक-6, जून-जुलाई 2019

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल द्वारा पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित

कला समय

कला, संस्कृति और विचार की द्वैमासिक पत्रिका

संरक्षक
नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
डॉ. महेन्द्र भानावत
पं. विजय शंकर मिश्र
श्यामसुंदर दुबे
पं. सुरेश तातेड़
कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय

परामर्श
लक्ष्मीनारायण पयोधि
ललित शर्मा
राग तेलंग
प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
प्रो. सुधा अग्रवाल
प्रो. कृष्णबिहारी भारतीय

सांस्कृतिक प्रतिनिधि
चेतना श्रीवास
डॉ. वर्षा नालमे
उमेश पाठक
बंशीधर 'बंधु'

वेबसाइट प्रबंधन
मयंक अग्रवाल

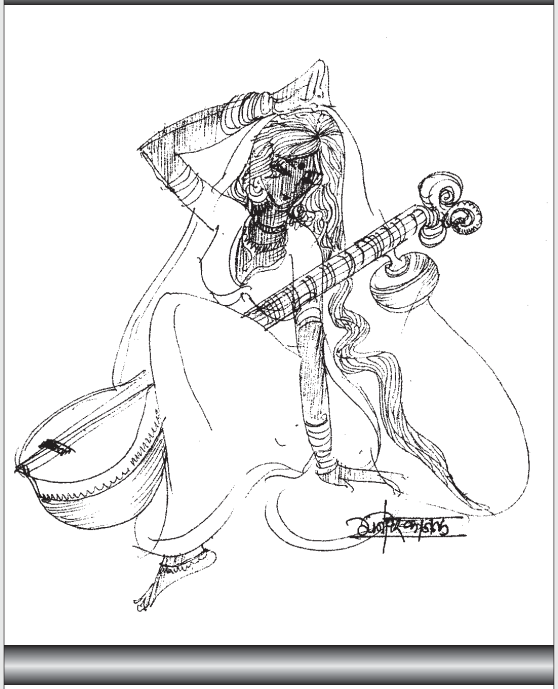

रेखांकन : मनोहर काजल

संपादक
भँवरलाल श्रीवास
bhanwarlalshrivas@gmail.com
94256 78058

सह संपादक
डॉ. मधु भट्ट तैलंग

उप संपादक
राहुल श्रीवास

संपादक मंडल
रामेश्वर शर्मा 'रामूभैया'
साहित्य
हरीश श्रीवास
कला
डॉ. मुक्ति पाराशर
संस्कृति
नरिन्दर कौर
प्रबंध

कानूनी सलाहकार
जयंत कुमार मेढ़े (एडवोकेट)

सहयोग राशि

वार्षिक	**: 150 /-**	**(व्यक्तिगत)**
	: 175 /-	**(संस्थागत)**
द्वैवार्षिक	**: 300 /-**	**(व्यक्तिगत)**
	: 350 /-	**(संस्थागत)**
चार वर्ष	**: 500 /-**	**(व्यक्तिगत)**
	: 600 /-	**(संस्थागत)**
आजीवन	**: 5,000/-**	**(व्यक्तिगत)**
	: 6,000/-	**(संस्थागत)**

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाइन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा कला समय के नाम से उक्त पते पर भेजें)

संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग संपर्क -
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016
फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सुविधा : 'कला समय' का बैंक खाता विवरण
ओरियण्टल बैंक ऑफ कॉमर्स की शाखा **(IFSC : ORBC0100932)** में **KALA SAMAY** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में नगद राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हों। पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे।
सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक/अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा दृष्टि ऑफसेट, 36-37, प्रेस काम्पलेक्स, जोन नं-1, एम.पी. नगर, भोपाल से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक- भँवरलाल श्रीवास

इस बार

कला समय के रचना संसार में समृद्ध हस्ताक्षर...

- संपादकीय / 5
  शास्त्रीय संगीत और लोक-संगीत
- आलेख / 6
  संसार का पहला नाटक / राधावल्लभ त्रिपाठी
- आलेख / 8
  इक रात तो ऐसी भी गुज़र जाने दो / नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
- आलेख / 10
  काव्य और चित्रकला का अंतर्संवाद : सघन कुंज, घन, घन तिमिर / श्यामसुंदर दुबे
- आलेख / 13
  गुरु-शिष्य परम्परा / पं. विजय शंकर मिश्र
- जीवन परिचय / 15
  संस्कृति के निर्माण में कला की भूमिका / वसन्त निरगुणे
- आलेख / 18
  कला और सौंदर्य / डॉ. अमरसिंह वधान
- आलेख / 22
  कला और जीवन / संदीप राशिनकर
- समीक्षा आलेख / 24
  कला समय का कला ऋषि को समर्पित अंक / कमलेश व्यास 'कमल'
- विश्व कविता / 26
  निसा लेला की कविताएँ, अनुवाद : मणि मोहन
  वीरेन्द्र आस्तिक के गीत / 27
  विजय बहादुर सिंह की कविताएँ / 28
  ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लें / 29
- आलेख / 30
  'पधारो मेघ'-वर्षा के रंग बंदिशों में / सविता गंगा
- आलेख / 33
  मध्यप्रदेश की महानतम वस्त्र शिल्प कला- चंदेरी साड़ियाँ / मजीद खाँ पठान
- शोध पत्र / 37
  ग्वालियर घराने की अप्रतिम गायिका विदुषी (डॉ.) वीणा सहस्रबुद्धे
- शोध पत्र / 39
  प्रो. (डॉ.) ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' की कृतियों का महिला सशक्तिकरण में योगदान / प्रियंका शर्मा
- पुस्तक समीक्षा / 41
  गहन मानवीय संवेदनाओं का दस्तावेज / राजेन्द्र नागदेव
- पुस्तक समीक्षा / 42
  एक अच्छी किताब - भारतीय प्रतीकों का लोक / वसन्त निरगुणे
- पुस्तक समीक्षा / 43
  अतएव- साहित्य के सकारात्मक मूल्यों पर विमर्श / राधेलाल बिजघावने
- संस्था समाचार / 45
  पद्मश्री डॉ. वाकणकर जन्मशती समारोह में ललित कला क्षेत्र की दो विभूतियाँ सम्मानित / भारतीय संस्कृति चेतना के मूल की पहचान है पयोधि का काव्य
- समवेत / 49
  सेन्ट्रल एकेडमी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, कोटड़ा, अजमेर में पुस्तक विमोचन / बंशीधर 'बंधु' का देवास में सम्मान / पद्मश्री कैलाश मड़वैया को ''कीर्ति कलश कैलाश'' / गयाप्रसाद रावत पत्रकार स्मृति संस्थान का व्याख्यान एवं सम्मान समारोह / भारत भवन में पाठ श्रृंखला में कथाकार हरिभटनागर का कहानी पाठ सम्पन्न / डॉ. देवेन्द्र दीपक द्वारा लिखित नाटक 'कांवर श्रवण की' का मंचन हुआ / कथक कार्यशला का समापन समारोह / वर्षा ऋतु विषय पर 'पधारो मेघ' संगीत सभा का आयोजन / बरखा ऋतु आई बूंद न झर लागे / धर्म एवं कला उद्भव एवं अन्तर्सम्बन्ध / डॉ. धनंजय वर्मा को साहित्यालोचना सम्मान डॉ. बिनय षडंगी राजाराम के निबंध संकलन 'अतएव' का लोकार्पण

राधावल्लभ त्रिपाठी

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

श्यामसुंदर दुबे

विजय बहादुर सिंह

पं. विजय शंकर मिश्र

वसन्त निरगुणे

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888 | **आवरण चित्र** - राजेन्द्र नागदेव (तेल चित्र) | **अंतिम आवरण चित्र** - सौजन्य: नर्मदा प्रसाद उपाध्याय | **छायाचित्र -** मनीष सराठे, सुनील सेन | **रेखांकन -** मनोहर काजल, राजेन्द्र नागदेव | **सहयोग -** धन सिंह, लता श्रीवास

संपादकीय

शास्त्रीय संगीत और लोक-संगीत

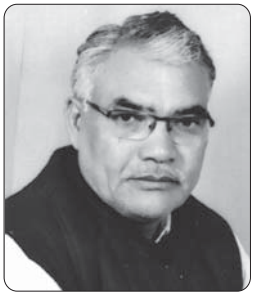

''मधुप गुनगुना कर कह जाता कौन कहानी यह अपनी
मुरझा कर गिर रही पत्तियाँ देखो कितनी आज घनी।
छोटे से जीवन की कैसे बड़ी कथाएँ मैं आज कहूँ
क्या यह अच्छा नहीं कि औरों की सुनता मैं मौन रहूँ।''

- जयशंकर 'प्रसाद'

जो संगीत स्वर, ताल, राग लय आदि के नियमों में बंधकर आकर्षक ढंग से गाया अथवा बजाया जाता है, उसे शास्त्रीय संगीत कहते हैं। शास्त्रीय संगीत का एक व्याकरण होता है, एक शास्त्र होता है, जिसके अनुसार गायन अथवा वादन होता है। इसमें श्रुति, स्वर, सप्तक, थाट, राग, मूर्छना, गमक मींड, तान, आलाप आदि का विस्तृत ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक होता है। शास्त्रीय संगीत के विकास में लोक संगीत ने काफी योगदान किया है। टप्पा, दादरा, कीर्तन भजन आदि लोक-संगीत के ऋणी है। ये ताल, लय गति और स्वर से मुक्त है। जबकि लोक-संगीत शास्त्रीय संगीत के नियमों की कठोरता से मुक्त होता है। यह बात नहीं कि उसमें शास्त्रीयता या तालबद्धता नहीं होती। लय, ताल और स्वर सहज रूप से लोक संगीत का अनुगम करते हैं। वह सहज बोधगम्य होता है। शास्त्रीय संगीत व्याकरण परक विधि-विशेष के कठोर बन्धनों से युक्त होता है। जबकि लोक संगीत निर्झर-सा स्वच्छन्द होता है। शास्त्रीय संगीत में अपेक्षित अभ्यास की अनिवार्यता है, जबकि लोक संगीत में नहीं होती। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि शास्त्रीय संगीत शिल्पप्रधान होता है तथा लोक-संगीत भावप्रधान। शास्त्रीय संगीत अभिजात्य वर्ग का संगीत है, लोक संगीत हर वर्ग हर क्षेत्र का संगीत है। लोक हमारे जीवन का महा समुद्र है, जिसमें भूत, भविष्य और वर्तमान संचित है। यह साहित्य प्राय: मौखिक होता है और परम्परागत रूप से चला आ रहा है। लोकगीत आदिमानव का उल्लासमय संगीत है। लोक गीत न पुराना होता है, न नया। वह तो जंगल के वृक्ष के जैसा है जिसकी जड़ें तो दूर जमीन में धँसी हुई है, परन्तु जिनमें निरन्तर नई-नई डालियाँ पल्लव और फल लगते हैं। लोकगीत हमारे जीवन-विकास के इतिहास हैं। उनमें जीवन के सुख-दुख, मिलने-विरह, उतार-चढ़ाव की भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। सामाजिक स्थिति के क्षण-क्षण के भाव लोकगीतों में बँधे हैं। इनमें सरल अनुभूति और भावों की गहराई है। लोकगीत का मूल जातीय संगीत में है। हरी-भरी धरती पर साहित्य की फसल को सरस और उन्नत करने के लिये लोकगीतों का रस-सिचन आवश्यक है। शास्त्रीय परम्परा की बेड़ियों को तोड़कर साहित्य यदि समाज की धड़कनों में समा जाना चाहता है तो उसे लोकगीतों के सहज, नैसर्गिम भावों का अनुसरण करना आवश्यक है। वस्तुत: भाषा की जटिलता एवं अलंकार की प्रमुखता के कारण काव्य का उपयोग शिष्ट समाज में तो हो सकता है, लोक-समाज में नहीं।

"शास्त्रीय संगीत व्याकरण परक विधि-विशेष के कठोर बन्धनों से युक्त होता है। जबकि लोक संगीत निर्झर-सा स्वच्छन्द होता है। शास्त्रीय संगीत में अपेक्षित अभ्यास की अनिवार्यता है, जबकि लोक संगीत में नहीं होती। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि शास्त्रीय संगीत शिल्पप्रधान होता है तथा लोक-संगीत भावप्रधान। शास्त्रीय संगीत अभिजात्य वर्ग का संगीत है, लोक संगीत हर वर्ग हर क्षेत्र का संगीत है। लोक हमारे जीवन का महा समुद्र है, जिसमें भूत, भविष्य और वर्तमान संचित है।"

इस बार वरिष्ठ साहित्यकर राधावल्लभ त्रिपाठी, नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, श्यामसुन्दर दुबे, पं. विजयशंकर मिश्र, वसन्त निरगुणे, डॉ. अमर सिंह वधान, संदीप राशिनकर, सविता गंगा, प्रो. डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव और म.प्र. की कला शिल्प चन्देरी साड़ी पर मजीद खाँ पठान का आलेख सम्मिलित किया है। भाषान्तर मणि मोहन, कविता विजय बहादुर सिंह, गीत वीरेन्द्र आस्तिक ग़ज़ल ज़हीर कुरेशी अंक के सभी महत्वपूर्ण आलेखों से कला समय को कला साहित्य जगत में बहुत पसंद किया जा रहा है यह हमारे लिये और पाठकों के लिये सुखद अनुभव है।

आप सभी के आशीर्वाद से मुझे दिल्ली का विशिष्ट साहित्यकार सम्मान 2 जुलाई 2019 को वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. निर्मल वालिया और प्रो. अमर सिंह वधान के हाथों मिला। यह मैं आप सभी सुधी पाठकों और वरिष्ठ साहित्यकार जगत का आशीर्वाद मानता हूँ। पिछले माह 6जून और 28जून को कला समय संस्था के साथ श्री दशपुर प्राच्य शोध संस्थान मन्दसौर और रौनक सोशल एण्ड कल्चरल सोसायटी तथा वन्दे मातरम् उत्सव समिति के संयुक्त बेनर पर पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर एवं श्री लक्ष्मीनारायण पयोधि पर केन्द्रित आयोजन हुए यह कला समय संस्था के लिये गौरव का विषय है।

हमेशा की तरह हमें आपकी प्रतिक्रिया का इंतजार रहेगा।

-भँवरलाल श्रीवास

आलेख

संसार का पहला नाटक

राधावल्लभ त्रिपाठी

वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रंथों तथा उपनिषदों के साथ-साथ वैदिक काल में लोकप्रिय साहित्य-आख्यान, गाथाएँ आदि की भी रचना होती रही। ये गाथाएँ यज्ञों, विवाह तथा विविध उत्सवों में गाई जाती थीं। इनके नमूने शतपथब्राह्मण तथा ऐतरेय ब्राह्मण में मिलते हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण में जन्मेजय के विषय में गाथा है-

आसन्दीवति धान्यादं रुक्मिणिं हरितस्रजम्।
अश्वं बबन्ध सारङ्गं देवेभ्यो जन्मेजयः।।

इसी प्रकार दो:षन्ति या दु:षन्त (दुष्यंत) के पुत्र भरत को लेकर गाई जाने वाली गाथाएँ ये हैं-

हिरण्येन परीवृतान् शुल्कान् कृष्णदतो मगान्
मण्णारे भरतोऽददाच्छतं बद्धानि सप्त च।
अष्टासप्ततिं भरतो दोष्यन्तिर्यमुनामनु।
गङ्गायां वृत्रघ्नेऽबध्नात् पञ्च पञ्चशतं हयान्।
महाकर्म भातस्य न पूर्वे न तापरे जनाः।
दिवं मर्त्य इव हस्ताभ्यां नोदापु:पञ्चमानवाः।।

ये गाथाएँ राजयूय यज्ञ के अवसर पर गाये जाने के लिये हैं। विवाह के अवसर पर गाई जाने वाली गाथाएँ भी वेदों में दी गई हैं। मैत्रायणीसंहिता (3.7.3) में वैवाहिक गाथाओं के उदाहरण इस प्रकार दिये हैं-

सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजिनीवती।
य त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः।
यस्यां भूतं समभवद् यस्यां विश्वमिदं जगत्
तामद्य गाथां गास्यानि या स्त्रीणामुत्तमं यशः।।

सीमन्तोन्नयन के अवसर पर गाई जाने वाली गाथा का उदाहरण आश्वलायन गृह्यसूत्र में दिया गया है। यह गाथा सोम का प्रशंसा में है, जिसमें कहा गया है- **सोमो नु राजाऽवतु मानुषीः प्रजा निविष्टचक्राऽसौ।**

इस लोकसाहित्य की भाषा भी आरंभ में वैदिक संस्कृत ही थी। यह साहित्य अधिकांशत: वाचिक परंपरा में ही प्रचलित रहा, लिखित रूप में यदि इसे संकलित किया भी गया, तो अब यह प्राप्त नहीं होता। अपवादस्वरूप वैदिक काल में विरचित एक आख्यान सुपर्णाध्याय मिलता है। यह संसार का पहला नाटक भी कहा जा सकता है।

ऋग्वेद, कृष्णयजुर्वेद, शतपथ तथा एतरेय ब्राह्मणों में स्वर्ग से अमृत ले कर आने की पुराकथा सांकेतिक व प्रतीकात्मक रूप में वर्णित है। सुपर्णापाख्यान उसका विस्तार है। मूल कथा में गायत्री छंद को अमृत लाने के लिये भेजा जाता है। छंद को ही वहाँ पक्षी के रूप में निरूपित किया गया है।

गया चरण त्रिपाठी का अनुमान है कि सुपर्णापाख्यान का अभिनय इंद्रमहोत्सव के अवसर पर किया जाता होगा। इंद्रमहोत्सव भाद्रपद के महीने में शुक्लपक्ष की द्वादशी के दिन आयोजित किया जाता था। कौशिकगृह्यसूत्र तथा अथर्वपरिशिष्ट में यह उत्सव उल्लिखित है। सुपर्णाध्याय के ही समान एक अन्य उपाख्यान सामवेद की परंपरा अमृताहरणम् 1 नाम से रचागया था। पर यह नाट्यशैली में अलग अलग संवादों के स्थान पर कथाकथन की शैली में है। सामवेद की कौथुमी शाखा के मंत्रों का इसमें गद्यबंधों के साथ गायन विहित है। अमृताहरणम् का प्रणेता सुपर्णाध्याय से परिचित था।

सुपर्णाध्याय 2 की रचना वैदिक काल के अंतिम चरण में हुई। यह ऋग्वेद का खिलभाग माना गया है। गयाचरण त्रिपाठी ने संभावना प्रकट की है कि यह भारत का ही नहीं विश्व का सबसे प्राचीन नाट्य है। इसमें गरुड़ के द्वारा स्वर्ग से अमृतकलश ले कर आने की प्रसंग निरूपित है।

कश्यप ऋषि की दो पत्नियाँ थी- कद्रू तथा विनता। कद्रू की संतानें सर्प थे। विनता की तीन संतानों में कनिष्ठ गरुड थे। गरुड ने देखा कि उनकी माता विमाता कद्रू की चाकरी करती है। इसका कारण पूछने पर विनता ने बताया कि वह अपनी सपत्नी से एक शर्त में पराजित हो गई थी। गरुड़ अपनी माता को इस कष्ट से मुक्त करने के लिये अपने सौतेले भाइयों के द्वारा मुक्ति शुल्क के रूप में निर्धारित अमृतकलश लेने स्वर्ग जाते हैं। स्वर्ग में पहुँच कर वे अमृतकलश के प्रहरियों को मार डालते हैं, इंद्र से उनका युद्ध होता है, अंत में इंद्र उन्हें अमृतकलश इस अनुबंध पर ले जाने देते हैं कि वे उसे सर्पों को दिखा कर चुपचाप वापस दे देंगे।

ऋग्वेद, कृष्णयजुर्वेद, शतपथ तथा एतरेय ब्राह्मणों में स्वर्ग से अमृत ले कर आने की पुराकथा सांकेतिक व प्रतीकात्मक रूप में वर्णित है। सुपर्णापाख्यान उसका विस्तार है। मूल कथा में गायत्री छंद को अमृत लाने के लिये भेजा जाता है। छंद को ही वहाँ पक्षी के रूप में निरूपित किया गया है।

गया चरण त्रिपाठी का अनुमान है कि सुपर्णापाख्यान का अभिनय इंद्रमहोत्सव के अवसर किया जाता होगा। इंद्रमहोत्सव भाद्रपद के महीने में शुक्लपक्ष की द्वादशी के दिन आयोजित किया

जाता था। कौशिकगृह्यसूत्र तथा अथर्वपरिशिष्ट में यह उत्सव उल्लिखित है। सुपर्णाध्याय के ही समान एक अन्य उपाख्यान सामवेद की परंपरा अमृताहरणम् 3 नाम से रचागया था। पर यह नाट्यशैली में अलग अलग संवादों के स्थान पर कथाकथन की शैली में है। सामवेद की कौथुमी शाखा के मंत्रों का इसमें गद्यबंधों के साथ गायन विहित है। अमृताहरणम् का प्रणेता सुपर्णाध्याय से परिचित था।

ओल्डेनबर्ग ने इसे आख्यान श्रेणी की रचना माना, जिसका गायन व वर्णन के साथ जनसमाज के सम्मुख प्रस्तुत की जाती थी। सुपर्णाध्याय के प्राप्त पाठ में केवल पद्यात्मक मंत्रभाग ही मिलता है, गद्य बहुत कम है। ओल्डेनबर्ग के अनुसार प्रत्येक प्रस्तुति में गद्यभाग आख्यायक अपनी ओर से बोलता होगा। हर्तेल ने इसकी तुलना रहस्य नाटकों से की।

श्रोडर सुपर्णाध्याय को ब्राह्मणसाहित्य व उपनिषदों के समानांतर विरचित एक इतिहासकाव्य मानते हैं।

सुपर्णाध्याय में 160 मंत्र तथा 31 वर्गों में विभाजित 15 सूक्त हैं। संवाद तो हैं, पर उनके वक्ता पृथक् पृथक् निर्दिष्ट नहीं है। इसके नाट्यरूप की कल्पना की जा सकती है। प्रथम दो सूक्त जो अनुष्टप् छंद में हैं बाद में जोड़े गये प्रतीत होते हैं, जब कि शेष सूक्त त्रिष्टुप् छंद में हैं। मंत्र के बीच में गद्य भाग में पात्रों की चेष्टाओं का वर्णन संस्कृत नाटकों में मिलने वाले नाट्यनिर्देशों या सूत्रधार के कथनों के समान है। पात्रों का प्रवेश व सूत्रधार के कथन भी सूचित हैं। पात्र प्रवेश करते समय अपना परिचय देता है। गया चरण त्रिपाठी इस प्रबंध के 15 सूक्तों को किसी नाटक के अलग अलग अंकों से तुलना करते हैं। गरुड़ का इंद्र के पक्ष के पात्रों से साक्षात् युद्ध प्रदर्शित नहीं किया गया इसका वर्णन संवादों में किया गया है। त्रिपाठी का यह भी अनुमान है कि ग्रीक कोरस के समान संवादों के बीच बीच में समूह कथाकथन करता चलता होगा। अनेक संवादों में पात्रों के द्वारा की गई चेष्टाओं से उत्पन्न ध्वनयों का संकेत है। सूक्त 11 में इंद्र बृहस्पति से पूछते हैं– जिस स्थान पर अमृतकलश स्थापित है, वहाँ से यह कैसा स्वर आ रहा है ?

संवादों में नाटकीयता तथा वाचिक अभिनय के संकेत हैं। उदाहरणार्थ

प्रस्तोता–

द्यावापृथिव्यौ भवतो भगिन्यौ ते मूर्तिमत्यौ चरतस्तु लोकान्।
द्यौरासीत् तत्र विनता सुपर्णी भूमिस्तु नाम्यभवत् कद्रुनाम्नी।।

(धरती और आकाश दोनों बहिनें हैं। वे दोनों रूप धर कर संसार में घूमती रहती हैं। इनमें आकाश तो सुपर्ण या गरुड़ की माता विनता है, और धरती कद्रू है।)

प्रस्तोता

गरुडस्य जातमात्रस्य त्रयो लोकाः प्रकम्पिताः।
प्रकम्पिता मही सर्वा सशैलवनकानना।।

(गरुड का जन्म हुआ, तो तीनों लोक काँप उठे। पहाड़ों और जंगलों के साथ सारी धरती काँप उठी)।

कहीं कहीं गद्य में संवाद है। उदाहरणार्थ सूर्य के अश्व का रंग श्वेत या कृष्ण इस पर विवाद करती कद्रू तथा विनता के ये संवाद–

विनता– **आ नु दीदिहीषे, उत मदेन माद्यसि ?**(किसी मद से मतवाली हो रही हो ?)

कद्रूः – **किम् आपश्यसि ? यद्यश्वः श्वेतो यदि वापिकृष्णः ?**(तुम क्या देख रही हो ? घोड़ा सफेद है या काला ?)

किन्नु केन नु कथं नु पश्यसि ? (किससे क्या देख रही हो ?)

विनता– **अनृतं वै वदसि कद्रु, काणे प्रतिघृष्टदर्शने।**(तू झूठ बोल रही है कद्रू, तू कानी और धुँधली दृष्टि वाली...)

सर्वश्वेतमहं मन्ये नास्य कृष्णोऽस्ति कश्चन।।

(मुझे तो सब सफेद दिखाई दे रहा है, इनमें कोई भी काला नहीं है।)

सुपर्णाध्याय में विष्णु का उल्लेख नहीं है, जब कि महाभारत में प्रतिपादित अमृताहरण के आख्यान में विष्णु की महत्वपूर्ण भूमिका है। अतः सुपर्णाख्यान को महाभारत से पूर्ववर्ती माना जा सकता है।

सुपर्णाध्याय और अमृताहरण इन दोनों में भारतीय नाट्य का प्राचीनतम रूप देखा जा सकता है। इस से यह भी प्रमाणित होता है कि भारतीय रंगमंच विश्व का सबसे प्राचीन रंगमंच है। इन दोनों नाटकों की परंपरा में कुछ समय पश्चात् भरतमुनि ने समुद्रथन समवकार और त्रिपुरदाह डिम ये दो रूपक मंच पर प्रस्तुत किये। जिसका विवरण उन्होंने नाट्यशास्त्र में दिया है।

---

1. सं. गया चरण त्रिपाठी नागप्र. दिल्ली, 2005
2. सुपर्णाध्याय रोमन लिपि में जर्मन विद्वान् वेबर के शिष्य एलिमर ग्रुबे (Elimar Grube) के द्वारा लैटिन में रचित भूमिका के साथ प्रकाशित किया गया। हर्तेल ने जर्मन भाषा में इसका अनुवाद किया जो 23 वें खंड में प्रकाशित हुआ। गयाचरण त्रिपाठी ने न केवल इस महत्वपूर्ण वैदिक नाट्य या काव्य का देवनागरी संस्करण तैयार किया, उन्होंने इस पदपाठ तथा जयस्वामी के एक दुर्लभ भाष्य तथा हिंदी व अंग्रेजी अनुवाद के साथ पुनः संपादित कर के प्रकाशित कराया है।
3. सं. गया चरण त्रिपाठी नागप्र. दिल्ली, 2005

– 812, शिवाजी नगर, चिपलुनकर रोड, आईएलएस लॉ कॉलेज के पास, पुणे – 411004, मो.: 09399223098

आलेख

इक रात तो ऐसी भी गुज़र जाने दो

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

रंग अकेला हो तो केवल रंग होता है, लेकिन जब वह दूसरे रंगों से मिलता है तो इंद्रधनुष हो जाता है। रेखाओं से मिलता है तो राजा रवि वर्मा का चित्र हो जाता है और जब राग से मिलता है तो संगीत हो जाता है।

संगीत हमारी केवल विरासत नहीं है, संस्कर है। यह हमारे रक्त में है, हमरी साँसों में और स्वभाव में है। इसका कारण यह है कि हमारे पुरखों ने संगीत को ईश्वर और प्रकृति से जोड़ा। संगीत में उन्होंने ईश्वरत्व के दर्शन किए। संगीत को उन्होंने इसलिए दैवी रूप में प्रतिष्ठित किया, ताकि उसके प्रति हमारी आस्था खंडित न हो, हमारा विश्वास भंग न हो और हम इस महान् अनुशासन की आराधना अपने आराध्य के रूप में करते रहें। इसलिए संगीत के बारे में जितनी धारणाएँ हैं, वे सब ईश्वर से जुड़ी हुई हैं।

यह धारणा है कि संगीत कला ब्रह्मा से शिव, शिव से सरस्वती और सरस्वती से नारद को मिली तथा नारद से स्वर्ग के किन्नरों, गंधर्वों और अप्सराओं ने इसे सीखा तथा इनमें से भरत, नारद और हनुमान इसे पृथ्वी पर लाए तथा इसे गांधर्व विद्या का नाम देकर इसका विस्तार किया।

एक धारणा यह भी है कि नारद ने वर्षों तक योग साधना कर भगवान् शंकर को प्रसन्न किया तथा भगवान् शंकर ने उन्हें संगीत कला प्रदान की।

यह भी कहा जाता है कि शिव के पाँच मुखों से पाँच राग जनमे और पार्वती के श्रीमुख से छठे राग कौसिकी की उत्पत्ति हुई। इसी संदर्भ में एक मान्यता यह है कि माता पार्वती की भुजाओं और कलाइयों में पड़ी चूड़ियों की झनकार से संगीत उत्पन्न हुआ।

चारों वेदों में 'ऋग्वेद' सबसे पुराना है, लेकिन भगवान् कृष्ण ने संगीत के तीसरे वेद, 'सामवेद' में स्वयं को पाया। गीता में उन्होंने कहा कि वेदों में मैं सामवेद हूँ- **'वेदानां सामवेदोस्मि'**।

यह भी उल्लेखनीय हे कि हमारे ईश्वर और देवताओं की पहचान संगीत के वाद्यों से होती है। ब्रह्मा आदिवीणा से, विष्णु शंख से, शिव डमरू से, गणेश मृदंग से, सरस्वती वीणा से और कृष्ण की पहचान वंशी से बनती है।

जहाँ तक प्रकृति से संगीत को जोड़ने का प्रश्न है, यह धारणा है कि संगीत की उत्पत्ति पत्तों पर जल की बूँदों के गिरने से हुई। स्वाति मुनि ने इन ध्वनियों को सुना तथा उनकी जानकारी विश्वकर्मा को देते हुए यह कहा कि वे ऐसा वाद्य बनाएँ, जिससे सभी ध्वनियाँ निकलती हों। हमारे यहाँ ध्वनि केवल कंठ से निकलने वाली आवाज़ भर नहीं है। इस ध्वनि के कुल हैं, रंग हैं, ऋषि हैं और द्वीप भी हैं।

संगीत का आधार ध्वनि है तथा ध्वनि का आधार नाद है। नाद के चार भेद-परा, पश्यंति, मध्यमा और बैखरी कहे गए हैं। इनमें मध्यमा से स्वर की उत्पत्ति होती है। नाद को हमारे पुरखों ने ब्रह्म की मान्यता दी है। हम नाद ब्रह्म की उपासना करते हैं। ओंकार नाद में ब्रह्मा, विष्णु और महेश- ये तीनों ईश्वर समाए हैं।

हमारे यहाँ तीर्थों को भी नाद से जोड़ा है। ओंकारेश्वर को नाद ज्योतिर्लिंग माना जाता है। वहाँ नर्मदा ओम का आकार बनाती है और उस मंदिर में जब चारों ओर मौन छाया हो तो ओंकार की ध्वनि सुनाई देती है।

पक्षी कलरव करते हैं, लेकिन यह संगीत नहीं है। मनुष्य ने ध्वनि को क्रम दिया, तरतीब दी और इस क्रम के कारण ध्वनि से राग बने। 'राग' शब्द 'रंज' धातु से बना है, जिसके दो अर्थ हैं- रंग देना तथा प्रसन्न करना। अर्थात् राग वह है, जो चित्त को अपने भाव से पूरी तरह रंग दे और इस रँगने की परिणति प्रसन्नता में हो, आनंद में हो।

दत्तिल, नंदी, कोहिल, भरत और मतंग से लेकर गुरुग्रंथ साहिब तक में रागों के संबंध में विस्तृत उल्लेख है। यह भी कहा जाता है कि ब्रह्मा ने तीस रागिनियाँ बनाईं। हमारे देश में राग और रागिनियों को लेकर विस्तार से अध्ययन हुआ। भैरव, मालकौंस, हिंडोल, दीपक, श्री और मेघ प्रमुख राग हैं, जिनकी रागिनियाँ हैं, रागपुत्र हैं, रागवधुएँ हैं।

यह जानना भी बड़ा रोचक है कि भारतवर्ष ही एकमात्र ऐसा देश है, जहाँ राग और रागिनियाँ चित्रित किए गए। हमारे यहाँ पाँच सौ वर्षों की रागमाला की चित्रांकन की परंपरा है। राजस्थान, पहाड़ और मालवा के मैदानों और दक्षिण के पठारों में मध्यकाल में अनेक स्थानों पर लघुचित्रों के निर्माण की शैलियाँ पनपीं, जिनमें विभिन्न रागों और रागिनियों को चित्रित किया गया। यही कारण है कि क्षेमकरण और हनुमान की दो परंपराओं के अलावा एक तीसरी परंपरा भी आधुनिक समय में स्थापित हुई, जिसे चित्रकार परंपरा भी कहा जाता है अर्थात् इस परंपरा में वे राग सम्मिलित हैं, जिनमें इन विभिन्न शैलियों में चित्र बने।

जहाँ तक वाद्यों का संबंध है, उनका भी एक लंबा इतिहास है। प्राचीनतम वाद्य झुनझुना माना जाता है, जो आज भी आदिवासियों में प्रचलित है। वाद्य संगीतमय ध्वनि तथा उसकी गति को प्रकट करने वाले उपकरण हैं। हमारे यहाँ कंठ को ईश्वर के द्वारा निर्मित वाद्य माना

गया है। यहाँ तत, सुषिर, अवनद्ध तथा घनवाद्यों के रूप में वाद्यों का वर्गीकरण भी किया गया है।

गुप्तकाल तक संगीत अपने आपमें पूरी तरह प्रतिष्ठित हो चुका था। कालिदास, जिन्हें अधिकांश विद्वान् गुप्तकालीन साहित्यकार मानते हैं, के अनुसार संगीत एक ललित विज्ञान है। कालिदास ने अपने ग्रंथों में विभिन्न वाद्यों का विस्तृत उल्लेख किया है। उन्होंने मेघदूत, ऋतु संहार, कुमरसंभव तथा रघुवंश में वीणा, पुष्कर, सुरज, वल्लकी, मर्दल, नूपुर, पटह, घेरी, घंटा, किंकिणी, तूर्य, वंशी तथा शंख का उल्लेख किया है। भारतीय संगीत के तीनों अंग-गायन, वादन तथा नृत्य कालिदास के द्वारा रचे गए ग्रंथों में अभिव्यक्त हुए हैं।

वाद्यों में मृदंग को सौंदर्यजनक वाद्य माना गया है।

सभी वाद्य ताल पर आधारित हैं, जिसकी विस्तृत व्याख्या संगीत रत्नाकर में की गई है। हमारी परंपरा में वीणा की अद्‌भुत प्रतिष्ठा है। 'याज्ञवल्क्य स्मृति' के अनुसार, वीणा का तत्त्व जाननेवाला बिना प्रयास के ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है। यह भी मान्यता है कि मानव शरीर एक ऐसी वीणा है, जिसमें स्वर, ताल और लय का सांगीतिक प्रवाह है।

ध्वनि का यही तारतम्य इस संगीत की आत्मा है और संगीत की यही आत्मा परमात्मा का स्वरूप है। इसलिए यदि हम सच्चे मन से संगीत सुनने के लिए बैठे हैं तो यह मानिए कि हम मंदिर में बैठे तल्लीन होकर अपने प्रभु की आराधना कर रहे हैं।

संगीत को लेकर विस्तार से बात की जा सकती है। हमारे देश में मोटे तौर पर संगीत के दो प्रकार हैं- हिंदुस्तानी और कर्नाटकी, लेकिन इन दोनों संगीतों की आत्माएँ समान हैं। इसलिए दो भेद भले हों, लेकिन संगीत एक ही है।

इस संगीत के राग हैं, रागिनियाँ हैं, संगीत ग्रंथ हैं, वाद्य हैं, संगीतकार हैं, उनके घराने हैं और इस संगीत का महान् इतिहास भी है। संगीत मकरंद, वृहद्‌देशी, मानसोल्लास, संगीत रत्नाकर, संगीत दर्पण, रागमाला, राजा मानसिंह तोमर द्वारा रचित मानकुतूहल और तानसेन द्वारा रचित बुधप्रकाश जैसे ग्रंथ हैं। ब्रह्मा, सरस्वती, कृष्ण और नारद जैसे वे देवी-देवता तथा ऋषि हैं, जिनकी पहचान संगीत के वाद्यों से बनती है, फिर स्वामी हरिदास और तानसेन से लेकर राजा मनसिंह तोमर और बैजू से लेकर बाजबहादुर और इब्राहिम आदिल शाह तक महान् संगीतकारों की लंबी परंपरा है।

इस खूबसूरत परंपरा की एक महान् विशेषता इसका सामासिक होना है। इस रवायत में उन मुसलमान रचनाकारों का महान् योगदान है, जिन्होंने हिंदुस्तानी संगीत को एक नई पहचान दी। सूफी संगीत आज कितना लोकप्रिय है, इसे हम सब जानते हैं। नात के गाए जाने का लंबा इतिहास है। इसी तरह अमीर खुसरो के समय से कव्वाली गाई जाने लगी। हिंदुस्तानी संगीत का माधुर्य सदियों से इस देश में बिखरता आया है। गीतगोविंद के रचनाकार जयदेव ने जिसे गांधर्व कला, कौशल कहा, वह कौशल समय में आए परिवर्तनों के साथ अपनी यात्रा जारी रख पाया और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक यह सिलसिला निरंतर चलता रहा।

अबुल फज़ल ने 'आईन-ए-अकबरी' में विस्तार से अकबर के समय की संगीत परंपरा का वर्णन किया है और क्रम के लिहाज से छत्तीस गायकों की सूची भी दी है, जिसके शीर्ष पर तानसेन हैं, जिनके बारे में अबुल फज़ल ने लिखा है कि पिछले एक हज़ार साल में तानसेन के जैसा गायक नहीं हुआ।

खुसरो से लेकर उस्ताद अलाउद्‌दीन खाँ, उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ, पंडित भीमसेन जोशी और पंडित रविशंकर तक एक लंबा सिलसिला है, इन सबके बारे में विस्तार से चर्चा की जा सकती है।

जहाँ तक मध्य प्रदेश का संबंध है, यह प्रदेश संगीत की दृष्टि से अत्यधिक संपन्न रहा है। यहाँ स्वामी हरिदास, बैजू बावरा व राजा मानसिंह तोमर जैसे ध्रुपद के प्रणेता तथा तानसेन जैसे महान् गायक हुए है।

ग्वालियर घराना विशेष रूप से प्रसिद्ध रहा, जहाँ सदारंग और अदारंग से लेकर हद्‌दू खाँ, हस्सू खाँ, रामकृष्ण बुआवझे, शंकरराव पंडित, कृष्णराव पंडित और राजा भैया पूँछवाले जैसे महान् गायक हुए। इंदौर में उस्ताद अमीर खाँ और देवास में कुमार गंधर्व जैसे महान् गायकों की परंपरा विद्यमान रही। मध्य प्रदेश में आज भी संगीत की अद्‌भुत और गतिशील परंपरा है। इस परंपरा को नई पीढ़ी को केवल परंपरा के रूप में न सौंपा जाए, बल्कि उन जीवन-मूल्यों के साथ सौंपा जाए, जिन्होंने हमारे स्वर, ताल और लय को शिल्पित किया है। यदि यह शिल्पित हो पाया तो फिर हमारी सांस्कृतिक पहचान धूमिल नहीं हो पाएगी।

संगीत की प्रतिष्ठा पूर्व और पश्चिम, दोनों में समान है। कभी प्लेटो ने कहा था कि जब संगीत के स्वर परिवर्तित होते हैं तो उनके साथ राज्य के विधान भी परिवर्तित हो जाते हैं। प्लेटो ने संगीत की इसी शक्ति की ओर इंगित किया था।

वास्तव में संगीत में यह शक्ति है कि वह हमें समय से, रात और दिन से परे ले जा सकता है। वह समय को सँवार देता है और मन को यह आशा पालने का अवसर देता है कि संगीतमय रात जब हो तो वह ऐसी बीत जाए कि सुबह की अगवानी करने का हम होश भी खो बैठें। मुझे उर्दू की ये पंक्तियाँ याद आती हैं-

बिखरे जो हसीं जुल्फ बिखर जाने दो
इस वक़्त को कुछ और सँवर जाने दो
बाक़ी न रहे सुबह का धड़का कोई
इक रात तो ऐसी भी गुज़र जाने दो।

- 85, इंदिरा गांधी नगर, आर.टी.ओ.कार्यालय के पास,
केसर बाग रोड़ इंदौर-9 (म.प्र.)
मो. 09425092893

आलेख

'बिहारी सतसई' के संदर्भ में

काव्य और चित्रकला का अंतर्संवाद : सघन कुंज, घन, घन तिमिर

श्यामसुंदर दुबे

कालिदास ने एक पतिंवरा राजकन्या को दीपशिखा से उपमित किया तो कविता के वैश्विक संसार में हलचल मच गयी। कालीदास नाम के कवि समुदाय में से एक प्रतिष्ठित कवि कालिदास को 'दीपशिखा कालिदास' नाम से संबोधित किया जाने लगा। आखिर, इस दीपशिखा में ऐसा क्या था? दरअसल कालिदास ने अपने इस वर्णन में लाईट और शेड्स के माध्यम से एक चमत्कार उत्पन्न किया था। इस छाया-प्रकाश को उन्होंने मनोभावों से काव्य के स्तर पर अत्यंत कुशलता से जोड़ा था। स्वयंबर में परिणय समुत्सुक राजकुमार बैठे हैं। राजकन्या मनोनुकूंल राजकुमार को वरमाला पहनाने बढ़ रही है। इस चलती हुई राजकुमारी को कवि ने 'संचारिणी दीपशिखैव रात्र्यौ' से संबोधित किया है। दीपशिखा जैसे रात्रि में चल रही हो। यह दीपशिखा जिस राजकुमार को अस्वीकार करते हुए आगे बढ़ जाती है, उस राजकुमार के चेहरे पर उदासी का अंधकार छा जाता है और जिस राजकुमार की ओर बढ़ती है- उसके चेहरे पर वरण की समुत्कंठा का प्रसन्न झलक उठता है। यह दीपशिखा का गुण भी है कि पीछे अँधेरा छोड़ती हुई- आगे-आगे प्रकाश फेंकती है। है न 'कमाल की उपमा'। इस उपमा के बाद तो कवियों में जैसे दीपशिखा की होड़ लग गयी। कविवर तुलसीदास ने सीता की सुंदरता को 'छविगृह मध्य दीप जंनु वरई' कहा। विद्यापति ने जाती हुई नायिका को विद्युत-लेखा के समान चलते हुये माना। इस विवेचन का तात्पर्य है कि कवियों में नायिका की देह कांति को दीप की उपमा से उपमित करने में कोई कोताही नहीं की है।

कविवर बिहारी ने भी अपनी नायिका को दीपशिखा से उपमित किया है। छिपते-छिपाते अपने प्रिय से मिलने की कोशिश में नायिका ने अँधेरी रात्रि को चुना है। इसके साथ ही उसने नीले वस्त्र भी धारण कर रखे हैं। अपने-आपको छिपा लेने के लिए उसने पुख्ता इंतजाम कर लिया है। इतने सबके बावजूद भी वह अपनी अंग कांति को नहीं छिपा पा रही है और चलती हुई दीपशिखा की भांति स्पष्ट हो रही है। बिहारी लिखते हैं-

'निसि अँधियारी नील पटु पहिरि, चली पिय-गेह।
कहौ, दुराई क्यों दुरै दीप-सिखा सी देह।।'

इस दोहे में बिहारी कहना चाहते हैं कि नायिका ने अँधेरी रात में, सखी से भी छिपकर अभिसार किया है, किंतु सखी उसको मार्ग में जाते हुए पहचान लेती है और कहती है- 'तुम अँधेरी रात में नीला वस्त्र पहन कर प्रिय के घर चली हो। कहौ यह दीपक की शिखा-सी तुम्हारी देह छिपाने पर भी कैसे छिप सकती है?' दोहा में रात का अँधेरा है, और नील परिधान धारिणी नायिका है। इस स्थूल परिवेश को चित्रकार दोहे के अर्थ की आत्मा से साक्षात्कार करने के लिए उसके अनेक आयामों को स्पष्ट करने के लिए अपनी कल्पना शक्ति का सहारा लेता है- अत: चित्रकार ने यह किया भी। इस दोहे पर निर्मित चित्र में चित्रकार ने अपना अद्भुत कौशल प्रस्तुत किया है।

चित्र आयताकार खड़ी ऊँचाई वाला है। चित्र की आधी ऊँचाई नायिका के व्यक्तित्व का स्पर्श करती है। जबकि आधी ऊँचाई का ऊपर वाला हिस्सा आकाशीय ऊँचाई वाली पृष्ठभूमि निर्मित करता है। नायिका की चित्रकृति छोड़कर ऊपर-नीचे आजू-बाजू गाढ़ अंधकार छाया हुआ है। ऊपर की आकाशीय स्थिति में सघन बादल घिरे हुऐं हैं। बादलों का सघन भराव है। बादलों का आभास बिजली के चमकने से ही पता चलता है। निचले हिस्से में कुछ हलकी-हलकी सी राह समझ में आ रही है। वृक्षों का छतनार स्वरूप, घने काले अंधकार में विलुप्त हो गया है। नीचे वृक्षों के तनों की कुछ-कुछ पहचान हो रही है। नीचे एक वृक्ष की जड़ के पास पींड में एक सर्प लिपटा है। राह में भी एक सर्प लहराता हुआ रेंग रहा है। पाँव की घुँघरू भी टूटकर रास्ते में गिर गयी है। रास्ता थोड़ा ऊबड़-खाबड़ है। इस चित्र की मुख्य आकृति नायिका की है। जो चित्र के समूचे सीमाबंध में अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज करा रही है।

कविवर बिहारी ने 'दीप शिखा सी देह' पर केन्द्रित एक और दोहा लिखा है। दोहा इस प्रकार है-

सघन कुंज घन घन-तिमिरू, अधिक अँधेरी राति।
तऊ न दुरिहै स्याम वह दीपसिखा सी जाति।।

इस दोहे में नायक दूती या सखी से प्रार्थना करता है कि आज अच्छा अवसर है, तूँ नायिका को अभिसार हेतु कुंज में लेकर आ। सखि नायक के मन में नायिका के सौन्दर्य की लालसा जगाने के निमित्त, नायिका के रूप की प्रशंसा करती है। वह कहती है कि यदपि यह अभिसार के लिए उत्तेजित वातावरण है किंतु सहेट स्थल की ओर जाने वाली नायिका को लोग देख लेंगे और सारा रहस्य खुल जाऐगा। क्योंकि इस घने कुंज में अधिक अँधियारी रात में मेघाच्छन आकाश के कारण और सघन होते अँधेरे में भी वह छिप नहीं पाऐगी। उसकी देह-कांति से उपजा प्रकाश ऐसा लगेगा जैसे कोई दीपशिखा चली आ रही हो। इस दोहे का भी संपूर्ण परिवेश चित्रकार ने अपने चित्र में अंकित किया है।

चूँकि चित्र पर दोहा अंकित नहीं है– अमूमन जैसा कि चित्रकार चित्र के शीर्ष भाग पर संबंधित दोहे का लेखन चित्र पर कर देते हैं। अत: यह मानकर हम चल रहे हैं कि चित्रकार के समक्ष ये दोनों दोहे थे। चित्र में जो विषय-वस्तु अंकित है वह दोनों दोहों से ग्रहीत है। पहले दोहे में नील पट का उल्लेख है। नायिका नीला वस्त्र धारण किए है। पट से यहाँ तात्पर्य उपरिवस्त्र से है। जबकि दूसरे दोहे में वस्त्र की चर्चा नहीं है। चित्रकार ने अपने चित्रित नायिका की ओढ़नी नीले रंग की निर्मित की है। यह प्रथम दोहे का प्रभाव है। प्रथम दोहे में मेघों की चर्चा नहीं है। जबकि दूसरे दोहे में 'घन' के माध्यम से बादलों की ओर संकेत किया गया है। प्रस्तुत चित्र में बादलों का चित्रण है। इन तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दोनों दोहे चित्रकार की चित्र-रचना के उपजीव्य रहे हैं। ऐसा इसलिए भी कि दोनों दोहों में नायिका को दीपशिखा की तरह प्रस्तुत किया गया है, दोनों में नायिका के अभिसार की चर्चा है।

चित्र : नर्मदा प्रसाद उपाध्याय के सौजन्य से

चित्रकार ने इस चित्र में नायिका का चित्रण बेहद प्रभावी ढंग से किया है। नायिका की देह-यष्ठि यथेष्ठ लंबाई वाली है। क्षीण कटि, पीन जंघन मत्स्योदर, किंचित् स्थूल वक्ष लंबोत्तर ग्रीवा, गोल मुख, लंबी और झुकी हुई नासिका, बड़े नेत्र, विशाल पलक, धनुहाँ भौंह, रसीले ओष्ठ उन्नत और बड़े कर्ण, लंबी बाँहें, नाजुक कलाईयाँ, गौरी गदकारी, हथेलियाँ काले सुचिक्कण बाल और लंबी सुडौल पगथालियाँ। यह संपूर्ण आंशिक विन्यास नायिका के व्यक्तित्व को आकर्षक बनाता है। नायिका की वस्त्र सज्जा भी उसके व्यक्तित्व में चार चाँद लगाने वाली है। बड़ा घेरेदार लहँगा, वक्ष तक बँधी हुई कंचुकी। सिर, पीठ और उदर को ढँगे हुए ओढ़नी के साथ पाँवों में, चूड़ीदार पाजामा, कलाई भर चूड़ियाँ, अँगुलियों में अँगूठी, गले में हार, कानों में कुंडल, नाक में बेसर धारण करने वाली यह सज्जित नायिका चित्रकार की अनूठी मानसिक संरचना है– यह एक जीवंत व्यक्ति चित्र है।

रंग संयोजन में चित्रकार ने कमाल कर दिया है। गाढ़े काले रंग, की पृष्ठभूमि में संपूर्ण चित्र चौकोर रूप से एक रंग के आकर्षण का समाहार है। यहाँ काला ही अच्छा रंग लग रहा है। इस गाढ़े काले रंग के माध्यम से अधिक अँधेरी रात को दर्शाया गया है। घने तिमिर को और अधिक सघन करने वाले बादल हैं। ऐसा लगता है, जैसे अंधकार की परतों पर परतें चढ़ रही हैं। चित्रकार ने इस अँधकार को गहन काले रंग से प्रकट किया है। नायिका के आसपास बहुत हलकी-सी उजास स्पष्ट होती है– यह उजास नायिका की देह-दीप्ति से प्रकट हो रही है। इस उजास में वक्ष की पींड की गोलाईयाँ उभर रही हैं। मैं फिर से कालिदास की उक्ति 'संचारिणी दीपशिखैव राभ्यौ' का उल्लेख यहाँ कर रहा हूँ। दोहा में यद्यपि ऐसे संकेत 'दीपशिखा-सी जाति' में अंतर्निहित है। दीपशिखा चल रही है, तो उसकी जगर-मगर छवि को चित्रकार ने केवल दीपशिखा की दीप्ति से नहीं, बल्कि उससे विकीर्ण होती प्रकाश कणिकाओं के नीम उजेले से व्यक्त किया है। इस आधार पर जैसे अपने ही प्रकाश से नायिका मार्ग की स्थितियों से अवगत हो रही है। उसे धूमिल-धूमिल ही सही मार्ग स्पष्ट हो रहा है। दो सर्प चित्रकार ने इस अँधकार में चित्रित किए हैं। एक सर्प अपनी गुंजलकों से पेड़ की जड़ के पास तने को कसे हुए है। एक सर्प मार्ग में लहराता हुआ नायिका के पाँव के पास से गुजर रहा है। संभवत: ये केंचुली धारण किए सर्प है। इन पर नायिका की दीप्ति पड़ती है तो ये चमक उठते हैं। नायिका की घुँघरू टूटकर मार्ग पर आ गयी है। वह भी चमक रही है। ऊपर आकाश में विद्युत-रेख प्रकाशित हो रही है। इसका रंग चमकीला पीला है।

नायिका का शारीरिक वर्ण एकदम कनकप्रभा युक्त है चमकदार पीताभ वर्ण नायिका की ग्रीवा और मुखमंडल को प्रोद्भासित कर रहा है। हाथों और पाँवों तथा उदर का रंग भी पीला है। उज्ज्वल है। फूलों की डिजायन से सजा लहँगा तनिक खैरापन लिए लाल रंग का है। लँहगे की बार्डर सुनहरी है। झीना नीला दुपट्टा नायिका के उपरि अंगों को ढँके है। इसकी किनार भी सुनहरी है। कंचुकी पीली है, जो नीले दुपट्टे से ढँक जाने के कारण हरे रंग की हलकी सी रंगत दे रही है। आभूषण स्वर्णाभ रंग वाले हैं। नायिका की

उठान दीप शिखा की आकृति वाली है। ऐसा लगता है, जैसे दीप शिखा लहक रही हो। रंगाभास के अंतर्गत चित्रकार ने अपनी मौलिक कल्पना का गहन और गहरा परिचय दिया है। बिहारी ने नीलपट की चर्चा की है- चित्रकार ने ओढ़नी नीली बनायी है। लहँगे के लाल रंग की कल्पना ने चित्रकार की रचनात्मकता को एक नया आयाम प्रदान किया है। यदि हम बहुत बारीकी से दीपशिखा के वर्णक्रम को देखें तो एक बात स्पष्ट होती है कि शिखा के निचले हिस्से का रंग लाल अग्निवर्णी होता है। फिर मध्य से ऊपर कुछ शेड्स लिए रहता है, एकदम शिखर पर पीताभ रंग रहता है। इसी रंग-संयोजन का चित्रकार ने अपनी नायिका के रंग-विन्यास में ध्यान रखा है। लाल लहँगा अग्निवर्ण का है जबकि मध्य तक आकर रंग धूमिल पीला हो जाता है और सिरोभाग पर ग्रीवा और सिर तक चमकदार पीत वर्ण है। इस रूप में चित्रकार ने नायिका के रंग क्रम में भी दीपशिखा बना दिया है। चित्रकार ने नायिका को गतिशील मुद्रा में निर्मित किया है। वह आगे कदम बढ़ा रही है और गर्दन झुकाकर मुड़कर पीछे देख रही है। मुख नीचे की ओर झुका हुआ है। आँख वृक्ष के तने से लिपटे सर्प की ओर हैं। दायाँ हाथ कोहनी को मोड़ते हुए ऊपर की ओर उठा है। हथेली खुली हुई है। अँगुलियाँ वर्जना की मुद्रा में हैं। लगता है जैसे सर्प से कह रही है- 'रुक जाओ।' बायाँ हाथ लहँगे की चुन्नटों को सम्हाले है ताकि चलते समय लहँगा ऊपर रहे। दायाँ पंजा जमीन पर जमा है, जबकि पिछला पंजा जमीन से गति की मुद्रा में उठा है। कमर में लचक दिख रही है। ऐसा लगता है जैसे जल्दबाज़ी में पैर से घुँघरू छिटक गयी हो, किंतु इसकी परवाह नायिका को नहीं है। उसके भीतर मिलन की व्याकुलता है। उसके मार्ग को न अँधेरी रात रोक पा रही है, न बादल रोक पा रहे हैं। न सर्प। वह निर्भीक होकर गतिशील है।

चित्रकार का अपना स्वतंत्र कल्पना संसार है- उसकी सर्जनात्मक ऊर्जा से चित्र में कुछ नए आयाम उभरकर आए हैं। सर्पों का जोड़ा मिलन प्रसंग की सांकेतिक कला को प्रकट करता है। ये नागिन-नाग का जोड़ा है। नागिन अपने नाग से मिलने दौड़ती जा रही है- उसे भी किसी तरह का भय-बोध नहीं है। आसक्ति का गहन भाव अपनी प्रतीकात्मकता में छवि से आगे बढ़कर उसका आनुपूरक बनता है। इस चित्र संरचना में। यह चित्र, आख्यान, रंग-संयोजन का कन्ट्रास्ट रचकर एक अद्भुत चित्र कविता को रच रहा है। मध्यकालीन लघु चित्र परंपरा में यह चित्र उन श्रेष्ठ चित्रों में परिगणित किया जा सकता है, जो विरल व्यक्ति उपस्थिति या कहिये कि एक व्यक्ति के माध्यम से प्रकृति और मनुष्य की अंतरंगता में मानवीय भावना-जगत के अनेकार्थी आशयों को प्रकट करता है। काव्य में अंतर्निहित अर्थ-संवेदनों को चित्रकार ने अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा से दीपशिखा की अनंत संप्रक्षरित संभावनाऐं खोल दी है। निश्चित ही इस चित्र को दीप शिखा चित्र से संबोधित किया जाना चाहिए। चित्र में देह और आँख में गज़ब की भाव क्षमताऐं अभिव्यक्त होती हैं।

- श्री चंडी जी वार्ड हटा (दमोह) म.प्र. 470775, मो. 9977421629

भारत भवन की पाठ श्रृंखला में कथाकार हरिभटनागर का कहानी पाठ सम्पन्न

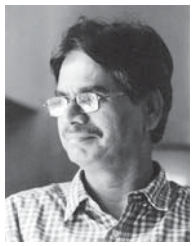

21 जुलाई, 2019 की शाम भारत भवन के अंतरंग सभागार में प्रख्यांत कथाकार श्री हरिभटनागर का कहानी पाठ हुआ। श्री भटनागर ने अपनी चुनींदा चार कहानीयों का पाठ किया। जिसमें नजारा, भय, शर्म, आँख का नाम रोटी प्रमुख कहानीयाँ सुनाई। अध्यक्षता रमाकांत श्रीवास्तव ने की तथा संचालन प्रेमशंकर शुक्ल मु.प्र.अ.भारत भवन ने किया। उपस्थित साहित्यकारों में मुकेश वर्मा, हीरालाल नागर, पूर्णचन्द्र रथ, विजयबहादुर सिंह, नवल शुक्ल, राजेन्द्र नागदेव, राजीव वर्मा, नरेन्द्र दीपक पबरा, मोहन सगोरिया, शैलेन्द्र शैली आदि विशेष रूप से उपस्थित थे।

डॉ. देवेन्द्र दीपक द्वारा लिखित नाटक 'कांवर श्रवण की' का मंचन हुआ

म.प्र. नाट्य विद्यालय में बाल रंगमंच प्रशिक्षण कार्यक्रम में बाल कलाकारों ने डॉ. देवेन्द्र दीपक द्वारा लिखित तथा सरफराज हसन के निर्देशन में 'नाटक कांवर श्रवण की' का मंचन किया गया। नाटक में श्रवण कुमार की मातृ-पितृ भक्ति को दर्शाया गया नाटक की अवधी 40 मिनिट थी। इसमें 8से 15 साल के 12 से अधिक बाल कलाकरों ने अभिनय किया। स्कूल बच्चों को रंगमंच के गुण सिखाने और संदेश भरी कहानीयों से परिचय कराने के उद्देश्य से यह नाटक म.प्र.नाट्य विद्यालय द्वारा बाल रंगमंच प्रशिक्षण और प्रस्तुति योजना शुरू की गई है।

आलेख

गुरु-शिष्य परम्परा

पं. विजय शंकर मिश्र

गुरु शब्द का अर्थ है- अज्ञानता के अंधेरे से प्रकाश की ओर ले जाने वाला। इसलिए गुरु का महत्व दुनिया के हर देश में, जीवन के हर क्षेत्र में है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम हो या योगेश्वर श्री कृष्ण, विश्व विजेता सिकंदर और अशोक हो या महाज्ञानी स्वामी विवेकानंद, सबने अपने अपने गुरु के चरणों में बैठकर ही ज्ञान का वह महाप्रकाश पाया जिससे बाद में पूरी दुनिया को आलोकित किया। गुरु कोई भी हो सकता है जरूरी नहीं है कि आप उसके पास जाकर ही शिक्षा ग्रहण करें और तभी उन्हें गुरु मानें। मीरा बाई ने संत रैदास और गोस्वामी तुलसीदास दोनों को गुरु के रूप में स्वीकार किया था। संत रैदास से मीरा को बिल्कुल सरल, सहज शब्दों में महाज्ञान की बातें प्राप्त हो जाती थी, लेकिन एक बार संत रैदास की अनुपस्थिति में गोस्वामी तुलसीदास से सुझाव मांगा। समस्या यह थी कि अपने ज्येष्ठ राजा भोज के प्रतिबंधों से वह परेशान हो चुकीं थी, लेकिन करें क्या? उन्होंने तुलसीदास को अपनी समस्या लिख भेजी और तुलसीदास जी ने उन्हें तुरंत उत्तर दिया...

''जा के प्रिय न राम वैदेही, तजिये ताहि कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही।'' और फिर क्या था? मीरा राजमहल से निकल पड़ीं यह गाते हुए... **''मेरो तो गिरधर गोपाल दूसरों न कोई.... जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई''**..

एक और घटना याद आ रही है, आदि शंकराचार्य गंगा स्नान करने के बाद बाहर निकले ही थे कि एक दलित का स्पर्श उनसे हो गया शंकराचार्य के मुँह से अनायास निकल गया कि मैं अपवित्र हो गया और मुझे पुन: स्नान करना चाहिए। उस दलित ने मासूम भाव से हाथ जोड़कर शंकराचार्य से पूछा... महात्मन... मेरे स्पर्श से आप अपवित्र हो गए या आपके स्पर्श से मैं पवित्र? शंकराचार्य जी की आँखें खुल गई और उन्होंने उस दलित को अपना गुरु स्वीकार किया। जीवन भर हिन्दू मुस्लिम जाति धर्म पर जोरदार प्रहार करने वाले संत कबीर ने भी गुरु और उनके महत्व को अस्वीकार नहीं किया। गुरु हमेशा सही ज्ञान ही देता है। यह हम पर निर्भर करता है कि हम उसे किस रूप में स्वीकार करते हैं। सिकंदर जब विश्व विजय अभियान के तहत भारत आनेवाले थे तो उन्होंने अपने गुरु सुकरात से पूछा था कि भारत से आपके लिए क्या लाऊँ? और सुकरात ने जवाब दिया कि उस पावन देश की थोड़ी सी मिट्टी और गंगा का पानी।

गुरु और शिष्य के बीच का रिश्ता जहाँ अटूट और अभिन्न होता है, वहीं अत्यन्त सूक्ष्म और सम्वेदनशील भी। एक सक्षम गुरु में वह शक्ति होती है कि वह एक साधारण से घर के प्रतिभावान बालक चन्द्रगुप्त को एक सम्राट बना दे तो एक शिष्य का भी यह कर्तव्य होता है कि गुरु चरणों पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर दे। गुरु द्रोणाचार्य की प्रतिमा बनाकर धनुर्विद्या का अभ्यास करने वाले एकलव्य ने आखिर गुरु द्रोणाचार्य के गुरु दक्षिणा मांगने पर अपना अंगूठा काट कर दे ही दिया था न, जबकि द्रोण ने उन्हें प्रत्यक्ष रूप से कुछ भी नहीं सिखाया था। दुर्भाग्यवश आज स्वार्थी तत्वों के हावी हो जाने के कारण गुरु और शिष्य के बीच का रिश्ता बहुत ही नाजुक दौर से गुजर रहा है। दोनों पक्ष अपने-अपने स्वार्थ में घिरे हुए हैं जो कि शुभ लक्षण नहीं है।

भारतीय धर्म, दर्शन, संगीत, साहित्य और विज्ञान तथा संस्कृति ने गुरु की महिमा का वर्णन बार-बार, अनेक बार किया गया है। क्योंकि गुरु ही हमें वह ज्ञान देते हैं जिनके सहारे हम इस भव सागर की वैतरणी को पार कर पाते हैं। गुरु की जरूरत सबको पड़ती है, क्योंकि गुरु ही ज्ञान का वह तीसरा नेत्र देते हैं जिनके सहारे हम आगे बढ़ पाते हैं, तभी तो गुरु को साक्षात परब्रह्म मानते हुए उन्हें गोविंद अर्थात् ईश्वर से भी ऊँचा दर्जा दिया गया है। अत: वर्ष का एक दिन गुरु के नाम पर समर्पित है जिस दिन को हम सभी लोग गुरु पूर्णिमा के नाम से जानते हैं। वैसे देश के दूसरे राष्ट्रपति सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णनन के जन्म दिन 5 सितंबर को भी हम शिक्षक दिवस के रूप में मनाते हैं।

गुरु पूर्णिमा मनाने की प्रथा भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से ही रही है। संगीतकारों के लिए यह दिन विशेष महत्व का होता है। इस

दिन हर संगीतज्ञ – चाहे वह किसी भी धर्म का क्यों न हो – गुरु की पूजा अवश्य करता है। जिनके गुरु दिवंगत हो गए होते हैं वे उनकी तस्वीर की पूजा करते हैं। यहाँ पर यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि गुरु पूर्णिमा के दिन गुरु की पूजा उन धर्मों के संगीतकार भी करते हैं जिन धर्मों में पूजा की परंपरा नहीं है, क्योंकि अन्य कला विधाओं की अपेक्षा संगीत नृत्य के क्षेत्र में गुरु का महत्व विशेष और विशिष्ट होता है। समस्त तकनीकी क्रांति के बावजूद संगीत के क्षेत्र में गुरु का पर्याय आज तक नहीं खोजा जा सका है, हालांकि कोशिशें बहुत हो रहीं हैं।

संगीत में गुरु के महत्व को मानते हुए ही इस दिन सभी शिष्य लोग चाहे वे जहाँ भी हों दूर दूर से गुरु की पूजा करके उनका आशीर्वाद लेने के लिए गुरुधाम चले आते हैं। अगर कोई शिष्य किसी भी विशेष कारणवश गुरु जी के यहाँ नहीं जा पाता है तो यथाशक्ति पत्र पुष्प स्वरूप गुरु दक्षिणा को क्षमा याचना सहित सादर भेजता है, क्योंकि मातृ ऋण और पितृ ऋण की ही तरह गुरु के ऋण से उत्तीर्ण होना भी असंभव माना गया है। तभी तो '**गुर्रूब्रह्मा गुर्रूविष्णु गुर्रूदेवो महेश्वरः, गुर्रूसाक्षात परंब्रह्मः तस्मै श्रीगुरवे नमः**' और गुरु की महिमा अपरम्पार तथा 'गुरु की निन्दा सुने जो काना हो पाप गो घात समाना' जैसी अनेक उक्तियाँ समाज में प्रचलित हैं।

सांगीतिक कलाओं में गुरुओं के महत्व के बने रहने का एक बड़ा कारण यह है कि सैकड़ों वर्षों के प्रयासों के बावजूद भी इसे पूरी तरह से लिख पाना, लिपिबद्ध कर पाना आज भी सम्भव नहीं हो पाया है। दरबारी कान्हड़ा के गंधार को लिख कर समझा पाना आज भी सम्भव नहीं है, क्योंकि उस लज्जित गंधार की लज्जा को प्रकट करने के लिए कोई लिपि नहीं है। दादरा और एकताल तथा झपताल के ना को पृथक-पृथक प्रकट करने के लिए कोई माध्यम नहीं है। इसे बजाकर ही स्पष्ट किया जा सकता है। तिरकिट और तेटेकत का निकास लगभग एक ही तरह से होता है। लेकिन वादन के आधार पर इन दोनों को एक दूसरे से अलग सहजता से पहचाना जा सकता है किन्तु उस अन्तर को लिखकर नहीं बताया जा सकता है। तबला में न वर्ण तीन तरह से बजता है, लेकिन कहाँ, किस बोल के साथ किसके शुरु में और किसके अंत में होने पर कैसे बजेगा इसका कोई सर्वमान्य नियम नहीं है। इसे कोई दक्ष गुरु ही समझा सकता है। पुस्तकें या इन्टरनेट नहीं। इसीलिए संगीत को गुरुमुखी विद्या मानते हुए इसे गुरु चरणों में ही बैठकर सीखने का सुझाव दिया जाता है।

– 705 डी / 21 सी, वार्ड नं. 3, मेहरौली, नई दिल्ली-110030
मो. 9810517945

कथक कार्यशला का समापन समारोह

14 जून सागर/ कथक केन्द्र नई दिल्ली एवं श्रुतिमुद्रा के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित पन्द्रह दिवसीय कथक कार्यशाला का भव्य एवं गरिमापूर्ण समापन रवीन्द्र भवन सागर म.प्र. में सम्पन्न हुआ। यह आयोजन कथक केन्द्र कथक नृत्य का राष्ट्रीय संस्थान, संगीत नाटक अकादेमी की घटक इकाई, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा आयोजित था। इस प्रशिक्षण शिविर हेतु गुरु के तौर पर डॉ. शाम्भवी शुक्ला मिश्रा को मनोनीत कर कथक केन्द्र द्वारा भेजा गया। कथक केन्द्र के निदेशक श्री बी.बी. चुग की अभिनव पहल पर स्थानीय सांस्कृतिक संस्था श्रुतिमुद्रा के सहयोग से यह दुर्लभ आयोजन संभव हुआ। वरिष्ठ कथक नृत्यांगना सुश्री कमलिनी अस्थाना (अध्यक्ष, सलाहकार समिति कथक केन्द्र) के मुख्य अतिथि के तौर पर पधारने से श्रोता अभिभूत रहे। डॉ. शाम्भवी शुक्ला मिश्रा के निर्देशन में करीब 63 प्रशिक्षुओं ने कथक के मूलभूत सिद्धांत जाने। उल्लेखनीय है कि डॉ. शाम्भवी शुक्ला ने बनारस घराने के गुरु पं. प्रेमनारायण जी से तालीम लेने के पश्चात दिल्ली कथक केन्द्र के वरिष्ठ गुरु तथा जयपुर घराने के महान नर्तक पं. राजेन्द्र गंगानी से सन् 1999 से तालीम लेना चालू किया और डॉ. शाम्भवी दिल्ली रहने लगीं।

दीप प्रज्जवलन से कार्यक्रम का आगाज़ हुआ। सुश्री कमलिनी जी का अभिनंदन श्रुतिमुद्रा सहसचिव डॉ. कविता शुक्ला ने किया एवं कार्यशाला निर्देशक गुरु डॉ. शाम्भवी शुक्ला मिश्रा का अभिनंदन समाज सेवी श्रीमती निधि जैन ने किया। सुश्री कमलिनी ने अपने उद्बोधन में सागर में हुई इस कार्यशाला की प्रशंसा करते हुये कहा कि नृत्य से कई लाभ हैं। आगे भी यही क्रम चलता रहे। कथक केन्द्र निदेशक श्री बी.बी. चुग द्वारा भेजे गये शुभकामना संदेश का वाचन पश्चात 63 प्रशिक्षुओं द्वारा तीन ग्रुप में कथक नृत्य की सुंदर प्रस्तुति की गई। 15 दिनों में सिखाये गये कथक के तोड़े, टुकड़े, तिहाई, बनारस घराने के बोल, प्रिमलू की प्रस्तुति पश्चात द्रुतलय में तराना से कार्यक्रम का समापन हुआ। डॉ. सिद्धार्थ शंकर शुक्ला ने सभी संगीत कलाकारों का एवं कार्यक्रम अध्यक्ष प्रो. सुरेश आचार्य जी का पुष्प गुच्छ से अभिनंदन किया। अलका सिद्धार्थ शुक्ला ने सुश्री कमलिनी जी का जीवन परिचय पढ़ा। मंच संचालन श्री अमित मिश्रा ने किया। श्रुतिमुद्रा सचिव श्री मुन्ना शुक्ला ने सभी सहयोगियों का आभार व्यक्त किया।

रपट – प्रो. दिनेश अत्रि

आलेख

संस्कृति के निर्माण में कला की भूमिका

वसन्त निरगुणे

संस्कृति और कला जीवन के सबसे महत्वपूर्ण अंग हैं। दोनों का मकसद जीवन को सँवारना है। दोनों ही मनुष्य के भीतर से पैदा होती है। यह कार्य मनुष्य के भीतर की प्रकृति करती है। बाहर की प्रकृति उसकी संस्कृति को रचने में उत्प्रेरित करती है। जीवन और प्रकृति मिलकर संस्कृति का निर्माण करती है। उसमें पशु-पक्षी से लगाकर छोटे से छोटे सूक्ष्म से सूक्ष्म जीवाणु-जीव-जन्तु, कीड़े-मकोड़े भी शामिल होते हैं। संस्कृति में समस्त चराचर सृष्टि शामिल होती है। सारा लोक और ब्रह्माण्ड उसका हिस्सा होते हैं। मनुष्य संस्कृति का निर्माता और उसका सजग संवाहक भी है। प्राचीन संस्कृति में से नयी संस्कृति का जन्म भी मनुष्य की आवश्यकता और यदृिच्छा पर निर्भर करता है। विभिन्न संस्कृतियों का योग भी यौगिक संस्कृति का कारण होता है। संस्कृति सदैव संवेदनशीलता की भूमि पर खड़ी होती है। उसके बंध इतने लचीले होते हैं कि किसी भी विजातीय संस्कृति के प्रभावशील तत्व उसके घेरे में आ सकते हैं। यहाँ दो बातें बहुत स्पष्ट रूप से समझने की जरूरत है कि संस्कृति के निर्माण करने वाले तत्व अलग होते हैं और संस्कृति को प्रभावित करने वाले तत्व अलग होते हैं। मनुष्य के बिना संस्कृति के निर्माण की कल्पना अधूरी है। पशु और मनुष्य में सबसे बड़ा फर्क यही है कि पशु कोई संस्कृति निर्मित नहीं कर सकता, जबकि मनुष्य संस्कृति निर्मित कर सकता है।

संस्कृति के निर्माण में मनुष्य का विवेक काम करता है। केवल प्रकृति और तत्व मिलकर संस्कृति का निर्माण नहीं कर सकते, उसमें मनुष्य की अन्तश्चेतना का योगदान जरूरी है। पहले पहल जब मनुष्य मिट्टी और घास-बाँस-लकड़ी के घर में रहने लगा, तब वह मिट्टी के बर्तन और वस्त्र बनाने लगा। संभवतया कला का जन्म भी मनुष्य यानी स्त्री-पुरुष के समन्वित प्रयास से हुआ है। उसका मतलब हाथ पैरों से किये जाने वाले श्रम की महत्ता की प्रतिष्ठा जीवन में मनुष्य ने इसके भी पहले कर ली थी। श्रम ही वह शक्ति है, जिससे मनुष्य की सभी कलाओं का जन्म हुआ है। श्रम संस्कृति का एक अनिवार्य अंग है, जिसे जीवन में 'कर्म' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

आदिमानव को सबसे पहले श्रम भोजन प्राप्ति के लिये करना पड़ा होगा। उसे शिकार का पीछा करने के लिए पैरों और हाथों की गति को बढ़ाना पड़ा होगा। दौड़ना पड़ा होगा। हाथों में पत्थर के पैने टुकड़े रखना पड़े होंगे। पैने टुकड़ों की निर्माण प्रक्रिया में मानव कला का प्रादुर्भाव छिपा है। पत्थरों से अग्नि पैदा करने में, पेड़-पौधों के पत्तों को जोड़कर तन ढँगने में आदिमानव को श्रम करना पड़ा था, यही श्रम विज्ञान और कला का जन्मदाता रहा है।

प्रकृति की रहस्यात्मक गतिविधियों का प्रभाव मनुष्य के मानस और अवचेतन पर निरन्तर पड़ा है और उसके रहस्यों को जानने की अथक जिज्ञासा मनुष्य के मन में शुरु से रही है। प्राकृतिक शक्तियों पर मनुष्य काबू नहीं पा सका है, इसलिये उसे पाने की कोशिश में अनेक प्रविधियों का आविष्कारक होने का श्रेय भी मनुष्य को ही जाता है। धर्म, दर्शन, अध्यात्म, साहित्य, कला और विज्ञान की रचना मनुष्य की इसी कोशिश का परिणाम है।

रचनाशीलता की प्रवृत्ति होने के कारण मनुष्य प्रकृति के उपादानों की उपयोगिता को समझकर विज्ञान के सहारे भौतिक सामग्रियों का निर्माण करता आया है और कला के विभिन्न आयाम रचते आया है। जिस वस्तु, विचार और आचार का मनुष्य सृजन करता है, वह संस्कृति का हिस्सा हो जाता है। संस्कृति मनुष्य के विचारों और आचारों का समुच्चय होती है। ये आचार विचार वाचिक परम्परा में तो अभिव्यक्त होते ही है। कला परम्परा में भी जो कि मनुष्य की रचना होती है, आचार-विचार की साक्षी होती है। कला की कोई भी वस्तु हो, संस्कृति का निर्माण करती है। क्योंकि उसमें कोई न कोई परम्परा, स्मृति या स्वप्न का सार समाया होता है। मानव की रचना का संसार बहुआयामी, वैविध्यपूर्ण और कल्पनाशील है। पश्चिम के प्रसिद्ध समाजशास्त्री डॉ. जी.पी. मर्डाक ने ठीक कहा है- कि ''संस्कृति में मनुष्य के उन प्रत्येक क्रिया-कलापों को शरीक किया है, जिनसे मनुष्य, मनुष्य बनता है, जिससे उसका संस्कृतिक वलय पूरा होता है।''

संस्कृति मनुष्य के कई बौद्धिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक, कलात्मक और रचनात्मक कार्य-कलापों से प्रकट होती है। यहाँ तक कि मनुष्य के चलने-फिरने, उठने बैठने, बोलने-चालने, पहनने-ओढ़ने तक से संस्कृति पहिचानी जा सकती है। किसी भी अंचल, देश की संस्कृति विशेषकर उसकी जीवन शेली के अतिरिक्त सबसे अधिक कला और वाचिक परम्परा में अभिव्यक्त होती है। कला ओर वाचिक परम्परा में मनुष्य की संस्कृति की सूक्ष्म से सूक्ष्म और संश्लिष्ट अभिव्यक्तियों को परखा जा सकता है। संस्कृति में वे सभी अभिप्राय और संस्तर मौजूद होते हैं, जो मनुष्य को संवेदनशील बनाते हैं और मनुष्य को जगत की सर्वश्रेष्ठ कृति बनाते हैं। संस्कृति उसी मनुष्य को हर देश, काल, परिस्थिति में बचाने का कार्य करती है।

लोक में कोई व्यक्ति, समाज और देश बिना संस्कृति के

संभव नहीं है। यहाँ तक कि जीवन में काम आने वाली भौतिक वस्तुओं में भी संस्कृति के मूल चिन्हों की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है। भौतिक सामग्री में पुरानी से पुरानी और नई से नई संस्कृति और कला के स्मृति चिन्ह मिल सकते हैं। मिट्टी, लकड़ी, पत्थर, धातु आदि में उकेरे विभिन्न जातीय रूपाकार मनुष्य की ऐतिह्य और पुरा संस्कृति के सबूत होते हैं। विश्व की प्राचीन संस्कृतियों के चिन्ह इन्हीं पुरा अवशेषों में मिले हैं, जिसके आधार पर उस काल की स्थापत्य कला के साथ संस्कृति के और इतर बाह्य तथा आन्तरिक अनुषंगों की पहचान होती है।

संस्कृति के सृजन में कला की भूमिका क्या हो सकती है ? इस बात पर विचार-विमर्श जब से संस्कृति का ताना-बाना बुना जाने लगा, तब से ही होने लगा था। कला संस्कृति का एक महतीय रूप है। अंग है। कला संस्कृति में प्राय: रंग भरती आई है। वह जीवन के सारे रंगों को समाहित ही नहीं करती बल्कि समारोहित भी करती है।

संस्कृति संस्कार से बनती है। संस्कार जो जीवन को संजोने का कार्य करते हैं। मनुष्य के जन्म से लगाकर मृत्यु पर्यन्त जीवन में कुछ न कुछ ऐसा अमूल्य जोड़ते चलते हैं, जिससे संस्कृति समृद्ध होती चलती है। बहुत से संस्कार मनुष्य ने कलानुष्ठानों में इस तरह बुना है, जो कलानुशासन को गति प्रदान करने का काम हर समय करते हैं और उस कला-संस्कृति का संरक्षण भी करते चलते हैं। संस्कृति में कला परम्परा को आगे बढ़ाने और संरक्षित करने की हजारों सालों से यही पारम्परिक विधि रही है। इससे बढ़कर और कोई तरीका खोजा भी नहीं जा सकता है, क्योंकि इसमें मनुष्य की स्मृति का सबसे बड़ा योगदान रहा है। भले ही न जाने कितने ही विज्ञान के संवेदी यंत्रों का आविष्कार हो जाय, स्मृति को संरक्षित करने की बजाय मनुष्य की स्मृति को विस्मृति की ओर धकेलने की चेष्टा करते हैं क्योंकि विज्ञान मनुष्य को निर्भर होने के लिये मजबूर करता है। ऐसे में लोकविज्ञान की पारम्परिक विधाओं के कला विहीन होने का खतरा सदैव बना रहता है, तब संस्कृति भी खतरे में पड़ जाती हैं।

भूमिका में कला संस्कृति के लिये क्या करती हे-

1. कला संस्कृति की अभिव्यक्ति का सबसे प्रमुख और नज़दीकी संसाधन है। चित्र, नृत्य परम्पराओं और महागाथाओं की लम्बी श्रँखलाओं में जातीय संस्कृति की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति देखी जा सकती है।
2. कला में संस्कृति के संवेदी तत्व सबसे अधिक मुखर होते हैं। नृत्य नाट्य, कथा गाथा गायन आदि में इसकी उपस्थिति परखी जा सकती है।
3. संस्कृति निर्माण के मूल तत्व बिल्कुल अलग होते हैं। कला संस्कृति को गढ़ती नहीं, वह तो उसके आन्तरिक मर्म और सौन्दर्य को संस्कृति में रहकर विस्तारित करती है।
4. कला संस्कृति को दृश्य-श्रव्य रूप प्रदान करती है। नृत्य, नाट्य, चित्र और शिल्प इसके उदाहरण हैं।
5. कला संस्कृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव, प्रभाव और दिखावों को अपने में हर समय संजोकर रखती है। कला जब परम्परा बन जाती है तो उसमें ये तत्व पीढ़ियों तक विगलित करते हैं।
6. कला संस्कृति के चाक्षुष और श्राव्य आनंद के चरम को द्विगुणित करने में समर्थ होती है। चित्र आँखों की कला है तो गीत-संगीत कानों की कला है। नृत्य-नाट्य आँख और कान दोनों की कला है।
7. कला जीवन के आन्तरिक तनावों को मुक्त करती है और कहीं न कहीं जीवन के अध्यात्म को खोलती है। नृत्य, गायन और चित्र में इसकी चरम स्थिति देखी जा सकती है।
8. कला चाहे वाचिक हो या रूपंकर अथवा प्रदर्शनकारी। उसका ध्येय किसी न किसी संस्कृति को प्रकट करना है। कोई भी कला संस्कृति के बिना निष्प्राण होती है।
9. कला संस्कृति की परम्पराओं को हर काल में जीवित और जीवन्त रखने की चेष्टा करती है। कला एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक, एक कण्ठ से दूसरे कण्ठ तक इन्हीं कारणों से पहुँचती हैं और हजारों वर्षों की यात्रा में होती हैं।
10. कला के बिना संस्कृति में रस निष्पत्ति असंभव है। निरवालिस संस्कृति और केवल कला कभी अर्थपूर्ण नहीं हो सकती।
11. कला धर्म, दर्शन, अध्यात्म, विज्ञान और साहित्य की अभिव्यक्ति है। कला के पारम्परिक अभिप्रायों में इन विषयों की गहराइयों तक पहुँचा जा सकता है।
12. कला जीवन को बचाये रखने का साधन है। जब जीवन बचता है जब संस्कृति अपने आप बच जाती है। जीवन से बाहर कुछ भी नहीं।
13. संस्कृति और कला एक दूसरे के बिना नहीं रह सकती। संस्कृति कला की अन्तनिर्भरता सावयवी है। संस्कृति में कला है और कला में संस्कृति समाहित है। संस्कृति में से ही कला की नई-नई शाखाएँ प्रस्फुटित होती हैं। रामायण, महाभारत, भागवत पुराण इसके उदाहरण हैं।
14. जिन विचारों को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता, उसके लिये कला में रंग और आकारों के माध्यम से रूपायित किया जा सकता है। शब्द से आगे की अभिव्यक्ति की भाषा रंग, आकार, स्वर, नृत्य संगीत आदि ही है।
15. कला में संस्कृति के मूल्यों को संरक्षित किया जा सकता है। जीवन के मूल्यबोध को बचाया जा सकता है।
16. वाचिक परम्परा और लिखित साहित्य में संस्कृति की उन सभी बातों को सहेजा जा सकता है जो मनुष्य को मनुष्य बनाती है। वेद पुराण, उपनिषद संस्कृत वाङ्मय इसके प्रमाण हैं। ज्ञान परम्परा का संरक्षण ऐसा ही होता आया है।

17. कला संस्कृति के सौन्दर्यबोध की अनुरक्षा में सदैव सजग रहती है।
18. गीत-संगीत, नृत्य, नाट्य, रूपक, कथा, गाथा, मिथक, कहावत, पहेली आदि कला के विविध आयाम संस्कृति की व्याख्या में ही रचे जाते हैं।
19. चित्र, मूर्ति तथा विभिन्न शिल्पों को गढ़ने के मूल में संस्कृति के प्रवाह को प्रकट करना ही है।
20. महा गाथा का महाकाव्य मनुष्य संस्कृति के आख्यान ही हैं।
21. समस्त अनुष्ठान, पूजा-पाठ, व्रत-उपवास, तीर्थ, यात्रा, नदी-पहाड़ वन-वनस्पति, घर-आँगन, स्वर्ग-नर्क संस्कृति और कला के ही कहीं न कहीं अंग होते हैं।
22. लोक देवी-देवता, देवालय, मठ-आश्रम, स्थापत्य के अर्थ-आशय भी कला के अविभाज्य अंग हैं, जिनमें संस्कृति के लक्षण प्रकट किये जाते हैं और प्रस्थापित भी किये जाते हैं।
23. कला में किसी भी जाति और देश के सांस्कृतिक इतिहास का अंकन देखा जा सकता है।
24. कला में संस्कृति-समय को देखा और परखा जा सकता है। उत्खनन में मिले कला के पुरावशेषों में समय को पढ़ा जा सकता है। जो मानव संस्कृति के विकास की लुप्त कड़ियों को हमारे सम्मुख खोलता है। मृद्भाण्ड, सिक्के, मूर्तियाँ, खिलौने आदि इसके प्रामाणिक दस्तावेज कहे जा सकते हैं।
25. कला की कृति बनती मिटती रह सकती है, लेकिन उनकी विधियाँ और संस्कृति विलुप्त नहीं होती। विधियाँ परम्परा में जीवित और जीवन्त रहती हैं और संस्कृति सदैव निरन्तरता ग्रहण करती रहती हैं। संस्कृति के बाहर जिन कलाओं का प्रार्दूभाव होता है, उनका जीवत्व बहुत लम्बा नहीं होता।
26. संस्कृति समय के साथ नया रूप ग्रहण करती है। उसमें समय के महत्वपूर्ण 'सत्य-सार' समाहित होते रहते हैं, इसी प्रकार कला भी समय के पद्चिन्हों को अपने में अंकित करती चलती है। संस्कृति में समय के 'सार तत्वों' को संरक्षित करने का यह तरीका पारम्परिक है।
26. जहाँ शब्द या भाषा अर्थ प्रकट करने में असमर्थ अथवा अमूर्त होने लगती है, तब चित्र और स्वर-संगीत अर्थ के पार ले जाने की क्षमता को प्रकट करते हैं। संस्कृति एक प्रवाह और कलाएँ उसकी सुन्दर धाराएँ हैं। संस्कृति में से ऐसे अनेक कला रूप प्रकट हो सकते हैं। लेकिन कला संस्कृति का कलात्मक रूप ही गढ़ सकती है।

- एच-7 उमा विहार, नयापुरा, कोलार रोड, भोपाल-42
मो. 09479539358

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

'कला समय' के सदस्य बनें- ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक /आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

'कला समय' की एजेंसी के नियम- ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 Email : bhanwarlalshrivas@gmail.com मो. 9425678058, 0755-2562294

लेखकों/कलाकारों से ❍ कला, संस्कृति और विचार के अछूते पहलुओं पर सृजनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबंध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन तथा शोध आमंत्रित हैं। ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई तथा मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न हो। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई-मेल से भी भेजे जा सकते है।

प्राथमिकता के साथ : Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

अनुरोध : वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें। सदस्यों को पत्रिका साधारण डाक से भेजी जाती है। नहीं मिलने की स्थिति में सदस्यता शुल्क के साथ ₹ 120/- का प्रतिवर्षानुसार रजिस्टर्ड डाक शुल्क अतिरिक्त भेजा जाना होगा।

-संपादक

आलेख

कला और सौंदर्य

डॉ. अमरसिंह वधान

यदि महीन नज़र से देखा जाए तो कला आत्माभिव्यक्ति का सशक्त साधन है और इसे समझने के लिए सौन्दर्य दृष्टि की आवश्यकता होती है। कला-वस्तु के आन्तरिक पक्ष और बाह्यी पक्ष दोनों भिन्नताएँ रखते हुए भी सौन्दर्य प्रदान करने का कार्य करते हैं। जीवन के प्रति दृष्टिकोण, सामाजिक नज़रिया, दैनिक कार्य-व्यवहार, रहन-सहन का स्तर, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति, विशेष रूप से मनुष्य की रुचि कला को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। व्यक्ति की प्रतिभा पर भी निर्भर करता है कि वह कला के प्रति किस तरह के भाव रखता है और कैसी अनुभूति महसूस करता है।

जहाँ कला मनुष्य की सौन्दर्य तृप्ति का साधन है, वहीं यह हमें सौन्दर्य को समझना भी सिखाती है। प्रारंभिक समाज का अध्ययन करते हुए मालूम होता है कि आरंभिक लोगों में जानवरों की चमड़ी, पंजे एवं दाँत, आभूषणों के तौर पर बहुत महत्व रखते थे। इसका कारण यह नहीं कि उन्हें रंग और नमूने आकर्षित करते थे, बल्कि सच्चाई यह थी कि आदि मानव स्वयं को जानवरों की खाल, चीते के पंजे या दाँत, हाथी दाँत, सींगों आदि से सजाता था और इन जानवरों की तरह फुर्तीला और ताक़तवर समझता था, कई बार उन्हें हरा भी देता था। मत भूलिए कि विकास समय की ज़रूरतों को प्रभावित करता है, जिससे स्थिति भी बदलती है और कला के अर्थों को विशाल क्षेत्र मिलता है।

उल्लेखनीय है कि प्लेटों की सौन्दर्य अवधारणा चित्रकला पर आधारित है, जबकि उसके शिष्य अरस्तू ने कला में सौन्दर्य के महत्व को मान्यता दी। लेकिन सुन्दरता को कला का अंत नहीं कहा। उसका मानना है कि अनुकरण ही सौन्दर्य अथवा आनंद है। सौन्दर्य और प्रतिभा दोनों ही कलाकृति के सृजनार्थ ज़रूरी हैं। जिस प्रकार किसी वस्तु की सुन्दरता का अंदाज़ा लगाने के लिए स्वाद ज़रूरी है, उसी प्रकार वस्तु के उत्पादन के लिए प्रतिभा आवश्यक है। प्रकृति की सुन्दरता एक सुन्दर वस्तु है और कला की सुन्दरता वस्तु के प्रदर्शन के सौन्दर्य में है।

क्रोचे का मत है कि 'कला एक अखंड अभिव्यक्ति है।' कला जब मूर्त रूप में उपस्थित होती है, तब उसके विभिन्न रूपों के दर्शन होते हैं। इन रूपों की भिन्नता में तात्विक भिन्नता न होकर केवल बाह्यी भिन्नता होती है, जबकि उसकी मूल अभिव्यक्ति एक ही रहती है। ज्ञातव्य है कि भारतीय विचारकों ने काव्य (साहित्य) को कला से भिन्न माना है। कारण यह है कि काव्य की गणना विद्या में तथा कलाओं की गणना अविद्या में की गई है। चित्र, मूर्ति, स्थापत्य, संगीत, काव्य आदि कला के क्षेत्र में आते हैं। साहित्य (काव्य) और संगीत की चर्चा एक साथ की गई है-

'साहित्य संगीत कला विहीनः,
साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीनः।'

रेखांकनीय है कि काव्य एवं संगीत में 'रस' को लक्ष्य माना गया है, जबकि अन्य कलाओं में कौशल एवं उपयोगिता पर बल दिया जाता है। यहाँ तक कि लुहार और कुम्हार का ध्यान वस्तु के उपयोग पर होता है, न कि सौन्दर्य पर। कहने का प्रायोजन यह है कि सौन्दर्य गौण और उपयोग प्रधान होता है। जहाँ वस्तु को शब्द, रंग, रेखा आदि के माध्यम से पुनः प्रस्तुत किया जाए, वहीं सौन्दर्य होता है। यह कहना महत्वपूर्ण है कि सभी कलाओं में विचार, भाव और कल्पना की अभिव्यक्ति होती है। ताजमहल और कुतुबमीनार को देखकर अनेक भावों तथा बोधों से हृदय उर्मिल हो उठता है, नटराज एवं बुद्ध की मूर्तियाँ कितने भावों और विचारों से हमारे मानस को तरंगित कर देती हैं। अजन्ता, एलोरा, ऐलिफेंन्टा की मूर्तिकला को देखकर हमें अनिर्वचनीय कलात्मक अनुभूति होती है। अनुभूति और आनन्द की दृष्टि से सभी ललित कलाएँ (चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य कला, संगीतकला, काव्यकला आदि) जिस प्रकार अपने माध्यमों की विशिष्टता रखती हैं, वैसे ही अपने सौन्दर्य में भी वे

विशिष्ट हैं। हमारे यहाँ 'अनुभव' को ही सबसे प्रामाणिक माना गया है। फिर कला का सौन्दर्य सहृदय की मानसिक अवस्था को उद्दीप्त करने में ही है।

यह सच है कि स्थितियों के बदलने एवं वैज्ञानिक विकास की गति तेज़ होने से सौन्दर्य एवं कला संबंधी धारणाओं एवं मापदंडों में भी बदलाव आया है, भले ही सुन्दरता और कला का मानवीय संवेदनाओं से गहरा जुड़ाव है। कला की विषय-वस्तु जनता पैदा करती है, जो कलात्मक आनंद एवं सौन्दर्य को मानने में समर्थ हैं। यह भी देखा गया है कि प्रत्येक सुनिश्चित कलाकृति अपने लिए अनुकूल रूप सुनिश्चित करती है। रूप की भीतरी कमी कलाकृति की भीतरी कमी से ही पैदा होती है। गैलेलियो ने ठीक ही कहा है- ''स्वाद, गंध, रंग और अन्य बहुत कुछ जो वस्तु की मल्कियत है, उनकी सही जगह निरीक्षणकर्ता की सहज बुद्धि में है।'' कला और सौन्दर्य के विषय में डॉ. नगेन्द्र ने बड़ी सुन्दर बात कही है- ''कला प्रत्यक्ष अनुभव का विषय है, लेकिन सौन्दर्यशास्त्र की पद्धति टेढ़ी और जटिल होती है।''

यह जानना भी दिलचस्प है कि कला केवल साहित्य, रंगमंच, चित्रकारी, संगीत आदि में ही नहीं, यह पशु प्रजनन, प्लास्टिक सर्जरी, सुन्दर व्यवहार, सुगंध, भोजन बनाना, शराब बनाना, भोजन प्रयोग विद्या, कपड़े डिज़ाइन करना, बालों को सँवारना आदि कला के विशाल क्षेत्र हैं। उल्लेख्य है कि प्राचीन यूनानी 'टैकने' शब्द कला एवं कारीगर के लिए इस्तेमाल करते थे। सौन्दर्य केवल कला और प्रकृति के बारे में बयान ही नहीं करता, बल्कि सुन्दर अथवा भद्दी वस्तुओं के विषय में भी विवेचना करता है। यह सब कुछ प्रकटीकरण, बुद्धि एवं मनोवृत्ति पर निर्भर करता है। सौंदर्य पक्ष का निर्णय करने के लिए व्यक्ति की पारदर्शी दृष्टि एवं बुद्धि पर निर्भर करता है कि वह वस्तु, प्राणी, कला, भवन, नृत्य, संगीत, काव्य, व्यक्तित्व प्रकृति आदि के आन्तरिक अथवा बाह्य किस पक्ष से अधिक प्रभावित होता है। आश्चर्य नहीं कि यही प्रभाव खुशी प्रदान करता है। मानवीय भावनाएँ काव्य, कला अथवा ललित कलाएँ, जीवन शैली, दैनंदिन व्यवहार से संबंधित वस्तुएँ, कारीगरी आदि के प्रति उत्पन्न हुई खुशी या आनंद सौन्दर्य दर्शन को दर्शाता है।

वैसे सौन्दर्य के अर्थों का विस्तार होता रहा है और मनुष्य का नज़रिया काल की स्थिति के साथ बदलता भी रहा है। मिसाल के तौर पर विक्टोरिया युग के लोगों को अफ्रीकी बुत्त भद्दे नज़र आते थे, जबकि एडवर्ड के समय दर्शकों को वही बुत्त खूबसूरत नज़र आए। तर्कसंगत तथ्य यही निकलता है कि सुन्दरता का मूल्यांकन मनुष्य की इच्छा एवं चाहत के ज़रिए विश्वसनीय बनता है। परन्तु यह भी सही है कि इसका निरीक्षण आर्थिक, राजनीतिक एवं नैतिक मूल्यों पर निर्भर करता है। भोजन की तलाश में रहने वाले मनुष्य के लिए कला और इसके सौन्दर्य के प्रति उत्सुकता नहीं होती। लेकिन यदि वह आर्थिक पक्ष से संपन्न एवं समर्थ है तो उसकी उत्सुकता महत्व रखती है। सचाई यह है कि कला प्रेमी ही कला का आनंद ले सकता है। हर कला का एक अस्तित्व है। मनुष्य की अन्दरूनी ताक़त एवं अन्तर्दृष्टि ही कला के प्रति उसकी जिज्ञासा को उभारती है। मनुष्य का विवेक एवं ज्ञान अपने आप में मनुष्य की ज़रूरी ताक़त है। मनुष्य की इच्छा, प्रेम, बुद्धि, जिज्ञासा, स्वभाव, प्रवृत्ति आदि उसे किसी सुन्दर वस्तु या खूबसूरत कलाकृति की ओर आकर्षित करते हैं।

सौन्दर्यात्मिकता की दृष्टि से भारतीय कला के सौन्दर्य का आरंभ आध्यात्मिकता अथवा दार्शनिकता के तहत हुआ। प्राचीन भारतीय वास्तुकला, भावनिर्माण, बुत्तकारी, चित्रकारी, साहित्य, नृत्य इनका सांकेतिक और आध्यात्मिक बयान ही था। उस समय इनका प्रमुख रुझान अध्यात्म एवं राजतंत्र के साथ संबंधित था। लेकिन आधुनिक युग में इन्हें सौन्दर्य दृष्टि से देखा जाता है। पुरातनकालीन, मध्यकालीन एवं आधुनिककालीन समय के भवन-निर्माण, साहित्य, बुत्तकारी, कारीगरी, चित्रकारी की अन्दरूनी और बाहरी पर्तों के बीच संकेतों के अर्थ और भवनों की निर्माणकारी के अहम् नुक्ते सौन्दर्य की विशेषता है। लेकिन इनके निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले श्रमिकों-कारीगरों की दृष्टि निश्चित रूप से भिन्न रही होगी।

गौ़रतलब है कि कला से प्रचार की माँग करना बेमानी है, सच्चा कलाकार तो हमारी भावना शक्ति को प्रेरणा देता है, एक क्रांति पैदा करता है। इतिहास साक्षी है कि भारत में मथुरा, साँची, सारनाथ, बोधगया, अमरावती, अजंता, एलोरा आदि बौद्ध तीर्थों और बौद्ध मूर्तिकारों ने अपनी मूर्तियों में भारतीय लोकजीवन में प्रचलित लोकसंस्कृति के भिन्न प्रतीकों के माध्यम से मूर्तिकला के क्षेत्र में एक अभूतपूर्व क्रांति पैदा करके विश्व को चकित कर दिया था। यह कहना भी कोई कम महत्वपूर्ण नहीं है कि प्रत्येक ऐतिहासिक दौर का एक अपना कलात्मक रूप होता है, जो समय की कलात्मक ज़रूरतों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। प्रमाण के तौर पर वैदिक काल में वेद, उपनिषद्, बुद्ध धर्म की आकृतियाँ, जैन धर्म के मंदिर, मूर्तिकला आदि के सौन्दर्य को आध्यात्मिक अर्थों में व्यक्त किया गया। मध्यकाल में मुग़लकाल की भवन-निर्माण कला और आध्यात्मिक रंगत वाला साहित्य रचा गया। कला का विकास काल की प्रवृत्ति अधीन होता रहा। लेकिन समय के साथ इसके प्रति मानवीय दृष्टिकोण में तबदीली आई और अर्थों में विस्तार हुआ।

इसमें मतैक्य है कि कला मनुष्य की प्रकृति है और इसको, सामाजिक शक्ति को संगठित करने वाली विधि के रूप में भी देखा

गया। कलाकार बाह्यी जगत को, 'जैसा वह है', उसी रूप में नहीं लेता, बल्कि इसे एक निर्मित संरचना के तौर पर लेते हुए इसकी वास्तविक प्रकृति को प्रकट करके इसकी पुनर्रचना करता है। यह तथ्य भी ग़ौर करने लायक है कि साहित्य और समाज में जो मुठभेड़ जारी रहती है, कलाकृति उसका प्रकटीकरण होती है। कला सृजना अचेत और सचेत तौर पर मनुष्य के विवेक, कल्पना, अनुभव, प्रकटीकरण, विचार, जीवन-शैली, परिवेश, सामाजिक परिस्थितियाँ सदैव साथ रहती हैं। सृजना कला के रूप में सामने आती है।

कला का सबसे महत्वपूर्ण और दिलचस्प पक्ष है, कलाकार की सृजनात्मक सोच। कलाकार हमेशा चिंतन और विचारों से कार्य करता है, लेकिन उसके सोचने का ढंग और सोच विशेष प्रकार ही होती है। इसकी जड़ें संकल्पों में नहीं, बल्कि बिंबों में होती हैं। यूँ तो कलाकार संकल्पों का भी सहारा लेता है, परन्तु उनके सृजनात्मक अमल को बिंब ही पेश करता है। ज़ाहिर है कि कला में बुनियादी महत्व कला के 'प्रभाव' का है। सवाल उठता है कि हम कला का आनंद कैसे लें? उत्तर में यही कहना है कि कला का आनंद लेने के लिए अनुभव की आवश्यकता होती है। फिर कला का आनंद भी पूर्णतया लेना चाहिए। किसी कविता, मूर्ति, चित्र का यदि आप आनंद लेना चाहते हैं तो आपको स्वयं ही उन्हें देखना होगा। किसी कलाकृति में आनंद तब तक प्राप्त नहीं होता जब तक आप स्वयं को उसमें लीन न कर दें। संसार में जितनी कलाएँ हैं, उन सबके बारे में कुछ जान लेना बड़ा कठिन है, फिर दुनिया के सर्वोत्तम चित्र अथवा मूर्तियों को देख लेना भी संभव नहीं।

कला का मूल्य समय पर निर्भर करता है और जब तक कुछ समय व्यतीत नहीं हो जाता, यह कहना कठिन है कि कौन-सी कला श्रेष्ठ है और कौन-सी नहीं। हर कलाकृति आदर की माँग करती है। लेकिन दूसरों के निर्णय के अनुसार अपना निर्णय एवं मत नहीं बनाना चाहिए। इसीलिए कला के क्षेत्र में 'कलाकार' और 'कलापारखी' दोनों का समान महत्व है। एक के अभाव में दूसरा अपना निज अस्तित्व खो बैठता है। कला की उन्नति में जब तक पारखी योग नहीं देते, तब तक कला फल-फूल नहीं सकती। मैनज़ोनी का विचार है कि ''कलाकृति के भीतर ही वे नियम व्यापक होते हैं, जिनके आधार पर उसकी आलोचना चाहिए''। कलाकार अपनी कला में स्वयं जितना रस लेता है, उतना ही रस वह दूसरों को देना चाहता है। कला का सच्चा गौरव 'स्वान्तः सुखाय' में न होकर 'परान्त सुखाय' की भावना में ही निहित है। यह किसी भी प्रकार संभव नहीं है कि एक कलाकार सुन्दर चित्र की रचना करके स्वयं आनंद विभोर हो ले तथा दूसरों को उस सौन्दर्य की रसात्मकता से वंचित रखने के लिए चित्र को नदी में बहा दे।

कला इतिहास साक्षी है कि कलाकार का दृष्टिकोण सदैव ही परमार्थी रहा है। उसने अपनी कला को कभी अपने तक ही सीमित नहीं रखा। चित्रकार सुन्दर चित्रों की रचना करता है, दर्शकों के लिए। मूर्तिकार का भवन निर्माता भी अपनी कला में सौन्दर्य भावना का समावेश दर्शकों के हृदय में आनंद की धारा प्रवाहित करने के लिए करता है, अपने लिए नहीं। ज़ाहिर है कि कला का सृजन लोक के लिए होता है, मात्र व्यक्ति के लिए नहीं। कलाकार और कला मूल्यांकन का संबंध जीवन के आदिकाल से आज तक अविच्छिन्न रहा है। यदि किसी देश में कला के सच्चे पारखी नहीं होंगे तो कला और कलाकार दोनों का भविष्य अंधकारमय रहेगा।

यह कहना एकदम वाज़िब है कि कला को देखने, जाँचने, परखने और उसकी तह तक पहुँचने के लिए सौन्दर्यशास्त्र एक वैज्ञानिक विधि है जिसके ज़रिए विचारों भावों का मूल्यांकन करने के लिए उसके ऐतिहासिक एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य की ध्यानपूर्वक-परखते ही पर्तें खोली जा सकती हैं। सौन्दर्य अपने आप में विशेष संस्कृतियों एवं विशेष सांस्कृतिक संदर्भों में मौलिक एवं अलग-अलग अर्थ ग्रहण कर जाता है। इस सच्चाई के लिए किसी सबूत को ढूँढने की आवश्यकता नहीं कि सौन्दर्य का ललित कलाओं के अध्ययन के लिए ज्ञान विधि के तौर पर विश्वसनीय प्रयोग हुआ है। प्लेटों के सौन्दर्य संबंधी विचार आदर्शवादी चिंतन पर आधारित थे। अरस्तू को सौन्दर्यशास्त्र का प्रवर्तक माना जाता है। उसने संगीत और सौन्दर्य संबंधी स्पष्ट विचार प्रकट किए। काण्ट की सौन्दर्य संबंधी विचार चर्चा को उसके शिष्य कवि शिलर ने आगे बढ़ाया। वाल्टेयर, ह्यूम, बर्क, ड्राईडन, जॉन्सन, फ्राइड, क्रोचे, मार्क्स आदि चिंतकों ने सौन्दर्य को अपने-अपने ढंग से परिभाषित करते हुए कला को परखने के संबंध में इसके महत्व को दर्शाया। यह कहना भी प्रासंगिक है कि वह प्रत्येक सांस्कृतिक सृजन, साहित्यिक सृजन अथवा प्राकृतिक सृजन जो मानवीय संवेदना के सौन्दर्यात्मक प्रभाव का सृजन करे सौन्दर्यशास्त्र का विषय क्षेत्र है। उस प्रखर संदर्भ में कला के विभिन्न रूप सौन्दर्य सर्जना के विभिन्न रूप कहे जा सकते हैं।

एक मार्के का तथ्य यह भी है कि सौन्दर्य संवेदना में सौन्दर्य का मनुष्य की चेतना और सामर्थ्य के साथ गहरा संबंध है। कला का भीतरी प्रमुख तत्व भी तो सौन्दर्य ही है, जिसके कारण मनुष्य की संवेदना प्रभावित होती है। कला के कौन-से प्रमुख प्रभावी तत्व सौन्दर्य की दृष्टि से खरे उतरते हैं, इसके साक्ष्यांकन के लिए कला की विशेषताओं से प्रभावित होकर ही सही निर्णय पर पहुँचा जा सकता है। सौन्दर्य पक्ष का निर्णय करने के लिए व्यक्ति की पारदर्शी दृष्टि और बुद्धि पर भी निर्भर करता है कि वह कला के आन्तरिक या बाह्यी सौन्दर्य के किस पक्ष से अधिक प्रभावित होता है। कला का सृजन करना और

गंभीरता से उसकी परख करना भी सृजन की तरह है। जो कलाकार सच की अभिव्यक्ति से जितनी गहराई से हमारे मन को स्पर्श करता है, वह उतना ही उच्च एवं उत्तम कलाकार है। कहना न होगा कि कला में ऐसे भावों का बोध ही सौन्दर्यानुभूति है और यही सौन्दर्य संवेदना का सौन्दर्य तत्व है।

बोसाँक ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सौन्दर्य का इतिहास' की भूमिका में लिखा है– ''सौन्दर्यशास्त्र दर्शन का एक अंग है। केवल ज्ञान के प्रति अभिरुचि के कारण ही इस शास्त्र का अध्ययन होना चाहिए न कि इसलिए कि इसके पठन–पाठन से कला की सृष्टि में सहायता मिलेगी।'' लेकिन इस सच्चाई को भी परे नहीं किया जा सकता कि सौन्दर्यशास्त्र कला और सौन्दर्य को परिभाषित करता है, सृष्टि–सृजन के क्षणों पर विचार करता है, स्पष्ट व्यवस्थित और तर्कसंगत विचार रखता है। काण्ट ने सौन्दर्य के बारे में बड़ी सुन्दर बात कही– ''सौन्दर्य वह है जो लाभ की भावना के बिना ही आनंद देता है।'' उन्होंने सही कहा है, क्योंकि किसी सुन्दर दृश्य अथवा कलाकृति को देखते समय लाभ की भावना नहीं होती, फिर भी हम आनंदित होते हैं। यह भी स्वीकारा जाना चाहिए कि सौन्दर्य सर्वदा उपयोगी होता है, कारण यह कि उसमें उपयोगिता तत्व छिपा रहता है। इसी छिपाव या गोपन अथवा व्यंजना के कारण कला का जन्म होता है। तभी तो अभिनव गुप्त ने कला को 'ध्वनि' कहा है और सौन्दर्यशास्त्र की दृष्टि से यह आज भी सत्य है और सर्वदा सत्य रहेगा। बिना शक, कला का आनंद मनुष्य–जाति के लिए उपयोगी होता है और इसका प्रभाव हमारी कल्पनात्मक अथवा भावनात्मक शक्ति पर पड़ता है। आश्चर्य नहीं कि कला और सौन्दर्य की रासायनिकी में एक विशिष्ट प्रकार के संयम की मौजूदगी होती है। सौन्दर्य का मूल स्रोत है, यह जगज़ाहिर है। प्रकृति मनुष्य को सौन्दर्यमयी सामग्री और सौन्दर्य संवेदना प्रदान करती है।

यदि हम प्रकृति को सुन्दर मानते हैं और किसी कलाकृति को खूबसूरत मानते हैं तो इसका कारण इनमें मौजूद भीतरी संयम ही है। इसी संयम के कारण प्रत्येक सुन्दर वस्तु हर किसी को सुन्दर ही लगती है। लेकिन सुन्दरता पैदा करने के लिए कलाकार को एकसुरता, अनुपातता और रंग–रेखाओं के नियमों का पालन करना होता है ताकि कला संयम बना रहे। कला का स्रोत और सौन्दर्य की भूख मनुष्य कुदरत में से ही प्राप्त करता है। कला की जितनी उत्पत्ति–प्रगति आज तक हुई है, वह मनुष्य की सुन्दरता के प्रति इस स्वाभाविक आकर्षण के कारण ही हुई है। सौन्दर्यानुभूति और कला अनुभूति मनुष्य के अंदर जन्मजात गुण हैं। प्रकृति का संयम कला और सौन्दर्य में भी संयम स्थापित करता है।

– निदेशक, उच्चतर शिक्षा एवं शोध केंद्र
3150, सेक्टर 24–डी, चंडीगढ़–160023, मो. 9876301085

वर्षा ऋतु विषय पर 'पधारो मेघ' संगीत सभा का आयोजन

दिनांक 8जून 2019 को गुजरात, भरुच में स्थित मधुरम स्कूल ऑफ म्युजिक के सभागार में वर्षा ऋतु पर आधारित 'पधारो मेघ' के अंतर्गत ''वर्षा के रंग बंदिशों में'' संगीत कार्यक्रम का आयोजन किया गया जिसकी संकल्पना, निर्मिती एवं प्रस्तुति ग्वालियर घराने की सुप्रसिद्ध गायिका एवं आईसीसीआर कलाकार सुश्री माधवी नानल द्वारा की गई।

इस कार्यक्रम की आधारशिला 'मधुरम स्कूल ऑफ म्युजिक' की संस्थापिका सुश्री माधवी शाह द्वारा रखी गई। कार्यक्रम की शुरुआत सुश्री नानल द्वारा दीप प्रज्ज्वलन से की गई। वर्षा ऋतु की बंदिशों का आनंद अधिकांशत: राग मल्हार में उठाया जाता है किंतु इस कार्यक्रम की विशेषता यह थी कि सुश्री नानल सहित उनकी शिष्याओं ने वर्षा के रंगों को भिन्न–भिन्न रागों में प्रस्तुत करके सभी संगीत प्रेमियों का मन जीत लिया। कार्यक्रम की शुरुआत पसायदान संत ज्ञानेश्वर रचित रचना से प्रारंभ हुई। कार्यक्रम में तबले की साथसंगत भरुच के श्री मीनेष चव्हाण, हार्मोनियम पर श्री हर्षद रानडे तथा निवेदन श्रीमती सविता गंगा द्वारा किया गया। वर्षा ऋतु को विभिन्न रागों में जैसे राग अहिर भैरव, राग वृंदावनी सारंग, राग तोड़ी, राग सूर मल्हार की बंदिशों में सुश्री माधवी नानल जी की शिष्याएं सुश्री निवेदिता जौहरी, आरती पांचाल, तृप्ति घाटगे ने प्रस्तुत किया। मधुरम स्कूल ऑफ म्युजिक की संस्थापिका सुश्री माधवी शाह द्वारा ''भैरवी–एक अध्ययन'' विषय पर सुंदर व्याख्यान प्रस्तुत किये गये। खास तौर पर विद्यार्थीगण को इस व्याख्यान का अत्यधिक लाभ मिला। कार्यक्रम का अंतिम चरण सुश्री माधवी जी नानल द्वारा सुरमयी संगीत माहोल को बरकरार रखते हुए राग पटदीप, राग देस मल्हार, राग बसंत बहार तथा मिश्र देस में बंधी अप्रतीम बंदिशों से बांधा गया। कार्यक्रम का समापन व धन्यवाद ज्ञापन श्री गोपाल शाह जी ने अपने सरल शब्दों में किया।

–सविता गंगा, मुंबई

आलेख

कला और जीवन

संदीप राशिनकर

जब हम कहते हैं कि कला और जीवन तो प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या कला और जीवन दो पृथक-पृथक चीज़ें है? क्या कला और जीवन को अलग-अलग कर देखा जा सकता है? क्या यह संभव है कि कला के बारे में बोलते, लिखते या सोचते समय उसमें जीवन न हो या जीवन के बारे में की जाने वाली चर्चा में कला उपस्थित न हो?

नहीं! यह बिल्कुल भी संभव नहीं है क्योंकि कला और जीवन को पृथक कर के नहीं देखा जा सकता है। कला और जीवन स्वयं एक दूसरे के पूरक ही नहीं बल्कि अविभाज्य घटक है। कला के बिना जीवन अधूरा है और कला रहित जीवन की कल्पना असंभव है।

बहरहाल, यह कला है क्या? कला कुछ नहीं जीवन का स्पंदन है। जिस तरह स्पंदन रहित शरीर मृत होता है वैसे ही कला रहित जीवन हमें मनुष्य होने की परिधि से बाहर कर देता है। क्योंकि कला, साहित्य, सृजन ही तो वे तत्व हैं जो हमें पशु से अलहदा, पशु से श्रेष्ठ बनाते हैं। यह अभिव्यक्ति का सामर्थ्य ही तो है जो मनुष्य को ईश्वर की श्रेष्ठ कृति बनाता है। मनुष्य भी क्या है ईश्वर निर्मित कला का श्रेष्ठ उदाहरण ही तो है।

ईश्वर इस सृष्टि का पिता है और पिता अपनी संतानों में भेदभाव नहीं करता वैसे ही रचनात्मक के उपादान के मामले में भी वह सहज और ईमानदार है। इसीलिए उसने हर व्यक्ति को रचनात्मकता की वो नेमत दी है जिसके चलते प्रत्येक व्यक्ति में कला सृजन या कला अनुराग के बीज मौजूद हैं। यह अलग बात है कि कौन सा व्यक्ति अभिव्यक्ति या रचनात्मकता के किस माध्यम में स्वयं को सहज या उत्कृष्ट पाता है। पर हाँ, यह निश्चित है कि कलात्मकता के अंकुरण की हलचल हम हर संवेदनशील व्यक्ति में महसूस कर सकते हैं।

पुष्पों के रंग, सुरभि, वातावरण के स्पंदन, परिवेश की नयनाभिरामता, प्राणिमात्र के दु:ख-दर्द, हर्ष-उल्लास या बच्चे की निरागस किलकारी में निहित कलात्मकता के अक्स् हम अपनी संवेदन क्षमता से ही तो महसूस करते हैं। तो क्या यह कहना उपयुक्त नहीं होगा कि आप में, हम में निहित संवेदना ही कला है। निश्चित ही यह संवेदना या संवेदन क्षमता ही है जो हमें न सिर्फ कला निहित रसों से साक्षात् कराती है वरन् उन्हीं भावों, उन्हीं रसों के उद्वेग से सिरजती है कला! कला जीवन का वह तत्व है जो हमें न सिर्फ जीने का सलीका सिखाता है वरन् यंत्रवत् आपाधापी वाली इस जीवन शैली में हमें सुकून के पल मुहैय्या कराता है।

कलाओं के जीवन में महत्व को हम प्रेशर कुकर के सेफ्टी वॉल्व से भी समझ सकते हैं। जिस तरह कुकर में सीमातित प्रेशर होने पर सेफ्टी वॉल्व से प्रेशर रिलीज होकर कुकर को फटने से बचाता है वैसे ही कलाएं हमारे जीवन में बढ़ रही कुंठाओं से निजात दिलाते हुए हमारे जीवन को सुरक्षित ओर सुरभित करती है।

अब यहाँ यह प्रश्न भी उठाया जा सकता है कि जरूरी नहीं कि हर व्यक्ति में किसी न किसी प्रकार की कला हो तो फिर उसके जीवन का क्या? उसके जीवन में निर्मित प्रेशर के लिए कहां है सेफ्टी वॉल्व? तो यहाँ यह कहना मौजू हो जाता है कि कला सिर्फ सृजन की मोहताज नहीं है। जरूरी नहीं है कि कला सिर्फ सिरजने में है। कला का वितान इतना संकुचित नहीं है कि वह सृजन की सीमाओं में बंध जाये। कला मात्र सिरजने में नहीं बल्कि देखने, सुनने और महसूसने में भी उपस्थित है। कला और कलादृष्टि दोनों ही वे अपृथककारी तत्व हैं जो आपके जीवन को सुखद और सफल बना सकते हैं। समाज में कला दृष्टि का विकास ही कला का समग्रता में विकास है। कलाएं सिर्फ परिवेश को सुखद और सुंदर ही नहीं बनाती वरन् वह एक सकारात्मक वातावरण का निर्माण भी करती है।

कला का जीवन में अवदान इतना वृहद है कि उसकी उपस्थिति सिर्फ मानव जीवन को नहीं वरन् पूरे समाज, पूरे राष्ट्र, पूरे विश्व को आनंदित बना सकती है। कलाएं सुंदरता, सकारात्मकता और सृजनात्मकता के भावों को जन्म देती है। यही वे सारे तत्व हैं जो मानवता को समृद्ध, समाधानी और संपृक्त बनाती है। समाज में इन दिनों व्याप्त असंतोष, कपट, प्रतिस्पर्धा और सत्ता हथियाने के समीकरणों ने जहां मानवीय मूल्यों को नेस्तनाबूत किया है वहीं यही अराजकता विध्वंस को जन्म दे रही है। यकीन मानिए तमाम बाहरी नियंत्रणों, कायदों/कानूनों के बावजूद परिवेश में हो रहे विध्वंसात्मक वातावरण को अगर नियंत्रित करना है तो उसका एकमात्र विकल्प है रचनात्मकता का विकास क्योंकि रचनात्मकता ही हो सकती है विध्वंस का मुंहतोड़ जवाब।

मनुष्य में रचनात्मकता का उद्भव उसमें निहित विध्वंसात्मक विचारों का सिर्फ नाश ही नहीं करता वरन् उसमें रचनात्मकता से उपजी सकारात्मकता उसके विचारों, व्यवहार को कुछ यूं परिष्कृत करती है कि विध्वंस करना तो दूर वह विध्वंस के बारे में सोच भी नहीं सकता। जिसे कलादृष्टि मिल जाती है वह सुंदरता को नष्ट करने का सोच भी नहीं सकता और यही सुंदरता, सकारात्मकता के

समर्थ में खड़ा उसका मानस उसकी सोच और कृत्य की मानसिकता को मानवता श्री का पक्षधर बनाती है।

प्रकृति ने भी हमें, हमारे परिवेश को इतनी तन्मयता और सकारात्मक भावों से गढ़ा है कि हम निरागस भाव से उसे निहारें तो पाएंगे कि हमारा जीवन कितना सुंदर और कलात्मक है। आवश्यकता है तो हमारी संकुचित विचारधारा से बाहर निकलकर उदात्तता से इस नियामत को गले लगाने की। इसे सहेजने की, इसे संवारने की। कलाएँ जीवन को मानसिक स्तर पर जितनी समृद्धता देती है, उतनी समृद्धि या समाधान कायनात की कोई दौलत हमें मुहैया नहीं करा सकती।

भारतीय दूरदर्शन के इतिहास में एक कार्यक्रम जिसके सफलता का अभूतपूर्व परचम फहराया वह था 'केबीसी' यानि 'कौन बनेगा करोड़पति'। लंबे समय तक चले इस कार्यक्रम से भारत में कितने नए करोड़पति बने यह चर्चा का अलग विषय हो सकता है किंतु हां, इस कार्यक्रम के एक जुमले ''लॉक किया जाए'' ने जरूर करोड़ों की जुबान पर अपनी हुकूमत काबिज की। यकीन मानिए कि 'जीवन में आपको क्या चाहिए' यह प्रश्न अगर स्क्रीन पर हो और ऑप्शन में कायनात दौलत, ऐशो आराम और कला हो तो बेझिझक आप कह सकते हैं कि 'कला' को लॉक किया जाये।

ईश्वर प्रदत्त व विकसित कला-सृजन की क्षमता मनुष्य को प्राप्त आनंद-समाधान के उस अद्‌भुत खजाने की कुंजी है जिसकी संपत्ति सिर्फ इजाफ़े का गणित जानती है। सृजन ही नहीं कला दृष्टि के साथ भी कला आनंद के उन उत्तुंग शिखरों पर पहुंचा जा सकता है जहां सर्जक अपने जीवन साफल्य का उत्सव मना रहे हों। कला रचने और उसे देखने वाले दोनों को ही यह अनमोल देन की सुविधा उपलब्ध है बशर्ते उन्होंने भौतिकवादी लिप्साओं से परे जीवन के ऑप्शन में किया हो 'कला' को लॉक!!

- 11 बी, राजेन्द्र नगर, इंदौर-452012 (म.प्र.)
मो. 9425314422 / 8085359770

बरखा ऋतु आई बूंद न झर लागे

''बरखा ऋतु आई, बूंद न झर लागे'', ये पुकार थी बनारस घराने के युवा गायक श्री इन्द्रेश मिश्रा की जो अपने गायन के माध्यम से तपती गर्मी में वर्षा को पुकार रहे थे। दिल्ली में अनेकों संस्थायें भारतीय कला और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में सतत संलग्न हैं और येन केन प्रकारेण विविध कार्यक्रमों का आयोजन करके युवा वर्ग को निरन्तर मंच प्रदान कर रहीं हैं। गाँधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा, राजघाट, नई दिल्ली द्वारा संचालित नवोदित कलाकार समिति उनमें महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह संस्था बिना किसी सरकारी अनुदान के पिछले 15 वर्षों से निरन्तर प्रत्येक माह के अंतिम शनिवार को शास्त्रीय संगीत समारोह का आयोजन अपने वातानुकूलित सभागृह में करती आ रही है। इसी क्रम में दिनांक 29 जून 2019 (शनिवार) को यह मासिक संगीत समारोह सम्पन्न हुआ जिसमें सुश्री रश्मि दत्त का एकल सितार वादन और श्री इंद्रेश मिश्रा का शास्त्रीय गायन सम्पन्न हुआ।

कार्यक्रम का शुभारंभ सुप्रसिद्ध सितार वादक उस्ताद सईद खान, तबलाविद श्री केवल कृष्ण कपूर (जम्मू) एवं चित्रकार डॉ. अशोक दीक्षित द्वारा माँ सरस्वती, आचार्य काका साहेब कालेलकर एवं बापू के चित्र पर माल्यार्पण से हुआ।

कार्यक्रम की पहली प्रस्तुति थी सुप्रसिद्ध सितार वादक श्री जगदीप सिंह बेदी की शिष्या सुश्री रश्मि दत्त का एकल सितार वादन। रश्मि ने राग देश में आलाप-जोड़ एवं तीन पेश की। आपने अपनी प्रस्तुति का समापन झाला बजाने से किया। आपकी तैयारी, राग की शुद्धता, अच्छी-अच्छी तान और तिहाइयों ने श्रोताओं को आनंदित किया। प्रस्तुति सराहनीय रही। आपके साथ कुशल तबला संगत श्री साहस वर्मा ने की।

कार्यक्रम की अंतिम प्रस्तुति थी बनारस घराने के युवा एवं प्रतिभा सम्पन्न गायक श्री इंद्रेश मिश्रा की। विद्वान गायक पंडित छन्नू लाल मिश्र जी के सुयोग्य शिष्य श्री इंद्रेश मिश्रा ने सर्व प्रथम राग मेघ की सुंदर अवतारणा करके तीन बंदिशें प्रस्तुत कीं। प्रथम बंदिश बिलंवित एकताल में निबद्ध ''बरखा ऋतु आई बूंदन झर लागे'', तीनताल में द्रुत रचना थी ''गगन गरजे दमकत दामिनी'' और एक विशिष्ट लय रूपक ताल में निबद्ध 'बादल गरज नभ घोर शोर पपीहरा' प्रस्तुत की। तत्पश्चात आपने राग मिश्र खमाज में जततताल में निबद्ध ठुमरी ''अब ना बजाबो श्याम बाँसुरिया'' और अंत में पूरब अंग की कजरी ''गोरिया पाए ना ही सैया के सवनवा में'' बहुत अच्छी तरह प्रस्तुत की। श्री इंद्रेश मिश्रा की मधुर आवाज, राग की सिलसिलेवार बढ़त, राग की शुद्धता, सरगम एवं तानों की विविधता खास थी। पंडित बड़े राम दास जी की राग मेघ की रूपक ताल की रचना अद्‌भुत थी। आपका ठुमरी और दादरा ने श्रोताओं को आत्मविभोर कर दिया। आपके साथ कुशल तबला संगत दिल्ली के युवा और होनहार तबला वादक श्री अमृतेश शांडिल्य ने कथा हारमोनियम संगत सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ पंडित देवेन्द्र वर्मा ने की।

रपट- लोकेन्द्र कुमार वर्मा

समीक्षा आलेख

कला समय का कला ऋषि को समर्पित अंक

कमलेश व्यास 'कमल'

औबेदुल्लागंज से इससे पहले भी सैकड़ों बार ट्रेन गुजरी होगी, जिस में बैठे कई यात्रियों की निगाहें बरखेड़ा के पास स्थित उस किले नुमा विशाल ऊँची चट्टानों पर पड़ी होगी? कौतूहल भी उत्पन्न हुआ होगा कि वहाँ क्या है...? कैसा है...? पर किसी ने यह नहीं सोचा कि चलो एक बार उतरकर वहाँ जाकर देखा जाए कि आखिर उस जगह पर है क्या..? यह कौतुहल यह जिज्ञासा किसी ऐसे व्यक्ति के द्वारा शांत होने के लिए बची हुई थी जिसका वहाँ से गुजरना अभी बाकी था...!! आखिर वह समय सन उन्नीस सौ छप्पन-सत्तावन में उस दिन आ ही गया जब एक पूर्ण सात्विक सीधा सरल सच्चा साधक, अपने नागपुर के सफर को बीच में ही छोड़कर रास्ते में उतर गया, जब उसने चलती ट्रेन से पहाड़ पर किले नुमा विशाल तथा ऊँची चट्टानों को देखा और चल दिया उस अनजान अनोखी पहाड़ी की ओर, जहाँ हजारों सालों से उसकी प्रतीक्षा में ''शबरी'' की तरह सैकड़ों शैलाश्रय अपने उद्धार की बाट जोह रहे थे। वह अति साधारण दिखने वाला किन्तु अत्यंत प्रतिभावान बहुआयामी व्यक्तित्व का धनी मनुष्य था, पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर। जिनके चरण कमल पड़ते ही वह धरा प्रखर ओज से परिपूर्ण हो गई। वह किले नुमा विशाल ऊँची चट्टान समस्त विश्व में चर्चित एवं प्रतिष्ठित हो गई। और ''भीमबैठका'' के नाम से अमर हो गई।

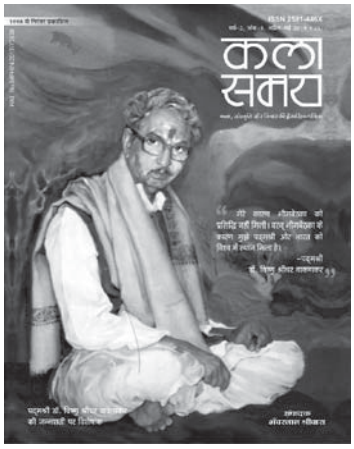

भोपाल से प्रकाशित पत्रिका, 'कला समय' ने पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर को समर्पित (अप्रेल-मई 2019) विशेषांक के रूप में निकाला है। विशेषांक के मुखपृष्ठ पर आलथी-पालथी लगाकर बैठे विनम्रता की प्रतिमूर्ति डॉक्टर साहब के ओजस्वी चित्र के साथ उनका यह कथन कि- ''मेरे कारण भीमबैठका को प्रसिद्धि नहीं मिली। वरन् भीमबैठका के कारण मुझे पद्मश्री और भारत को विश्व में स्थान मिला है।'' उनकी विनम्रता का प्रतीक है।

मुख्य पृष्ठ के ठीक पीछे श्री संदीप राशिनकर द्वारा बनाया गया एक रेखाचित्र है जिसमें डॉक्टर वाकणकर साहब और श्रीमती लक्ष्मी वाकणकर के हस्ताक्षर हैं। साथ ही सविनय एक श्रद्धांजलि ''क्या वाकणकर होना है?'' के रूप में श्री संदीप राशिनकर की एक विलक्षण कविता है। बानगी देखें-

''बहुत असंभव बहुत अशक्य है
यह जानना कि
क्या क्या होना, कितना-कितना होना
वाकणकर होता है।''

कार्ल मार्क्स के प्रेरणादायक कथन से शुरुआत करते हुए 'कला समय' के संपादक श्री भंवरलाल श्रीवास ने अत्यंत प्रभावशाली संपादकीय लिखा है। उन्हीं के शब्दों में- ''सच की राहें कभी भी आसान नहीं रही, सच का दामन थाम कर जो भी जिंदगी के पथरीले पहाड़ लाँघने का हौंसला रखते हैं, उनकी यश जयी यात्राएँ इतिहास की यादों में सदा महफूज रहती हैं।''

इसके बाद वरिष्ठ विद्वान लेखक श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय का आलेख है जिसमें डॉ. वाकणकर के द्वारा किए गए अनेकों अन्वेषणों का उल्लेख है। उपाध्याय जी लिखते हैं- ''डॉ. वाकणकर लीक से हटकर कार्य करने वाले पुरातत्ववेत्ता, इतिहासविद् तथा संस्कृतिविद् थे। उनके समग्र अवदान के संबंध में अभी मूल्यांकन नहीं किया गया है। यदि मूल्यांकन न भी हो किंतु जो उन्होंने किया, उसका परिचय भर भी नई पीढ़ी के शोधार्थियों को मिल जाए तो इसके कारण शोध के अनेक पथ निर्मित होंगे।'' इसके बाद इतिहासविद् श्री ललित शर्मा द्वारा श्री वाकणकर के स्वर्गवास के पूर्व उन्हीं के निवास 'भारती भवन' में हुई भेंट वार्ता के प्रमुख अंश, जिसमें शैलाश्रयों के प्रति उनके रुझान, शैलाश्रय किस प्रकार इतिहास के बंद पृष्ठों को उजागर करते हैं? हाड़ौती एवं मालवा क्षेत्र के शैलाश्रयों की आकृति काल निर्धारण और उपयोगिता इत्यादि के प्रश्न-उत्तर के अलावा सरस्वती नदी के उद्गम की खोज के बारे में श्री वाकणकर की सैकड़ों किलोमीटर पैदल यात्राओं का भी उल्लेख है। फिर 'दशपुर शोध संस्थान मंदसौर' के निदेशक श्री कैलाश चन्द्र घनश्याम पांडे का आलेख है। जिसमें श्री वाकणकर द्वारा भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रिय भूमिका निर्वाहन से लेकर 1061 में पुर्तगाली साम्राज्य को चुनौती देते हुए लाठियां खाने के उल्लेख के साथ-साथ मंदसौर में वाकणकर जी द्वारा उत्खलन कार्य में पाण्डेय जी द्वारा तीन रुपये रोज की मजदूरी करने से लेकर सन् 1970 से 1982 तक श्री वाकणकर के निज सेवक के रूप में गुरु-शिष्य परंपरा के अंतर्गत सीखने के दौरान उन्हीं के

निवास पर 1982 में बनारस के चित्रकार श्री वासुदेव स्मार्त की कलाकृति 'बारहमासा' की प्रतिकृति सिर्फ चार घंटे में डॉक्टर वाकणकर जी द्वारा बनाकर बनारस के चित्रकार श्री वासुदेव स्मार्त सहित सबको आश्चर्यचकित करने का भी उल्लेख है। अगला लेख अधीक्षक पुरातत्वविद् श्री नारायण व्यास का है। जिसमें वाकणकर जी द्वारा अपने जीवन काल में 4000 से अधिक प्रागैतिहासिक चित्रित शैलाश्रयों की खोज। 1976में अमेरिकी विद्वान श्री आर.आर. ब्रुक्स के साथ शैलचित्रों पर ''स्टोन एंड पेंटिंग्स ऑफ इंडिया'' पुस्तक प्रकाशन के अलावा कायथा में ताम्राश्मयुगीन संस्कृति की खोज, विदिशा के निकट बेतवा के तट पर रंगई में ताम्राश्म-नवाश्म युगीन संस्कृति के अवशेषों को खोजकर दो संस्कृतियों के मिलन स्थल को सिद्ध करना इत्यादि बातों के अलावा आदिबदरी सोमनाथ तक की 4000 मील यात्रा द्वारा विलुप्त सरस्वती नदी की खोज का उल्लेख है।

पत्रिका 'कला समय' में पद्मश्री डॉ. विष्णु वाकणकर (हरिभाऊ) के जीवन परिचय के बाद अगला लेख संस्मरण के रूप में डॉ. वाकणकर के मानस पुत्र एवं कला शिष्य श्री सचिदा नागदेव का है। जिसमें 1953 से लेकर 1988सिंगापुर में उनके निधन तक का भावपूर्ण उल्लेख है। हरि भाऊ की पानी पीने की कैमल गोंद की नीले रंग की शीशी वाला प्रसंग आंखों को सजल कर देता है। कितना सादा जीवन जीते थे हरि भाऊ... !

श्री ललित शर्मा द्वारा संकलित लेख 'भीमबैठका एक परिचय' के अलवा डॉ. मुक्ति पाराशर, डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' डॉ. भारती श्रौती, डॉ. रेखा भटनागर, श्री नवल जायसवाल, श्री उमेश पाठक, श्री नरेश कुमार पाठक, श्री राजेन्द्र नागदेव, स्मिता नागदेव, डॉक्टर बी.एम. रेड्डी और डॉक्टर अशोक त्रिवेदी के भी महत्वपूर्ण आलेख इस अंक में हैं। सच कहूं तो 'कला समय' के इस अंक में पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर पर जो कार्य हुआ है, उसके बारे में विस्तार से विमर्श के लिए इस आलेख में कई और पृष्ठों की बढ़ोत्तरी करना पड़ेगी। 'कला समय' का यह अंक अत्यंत महत्वपूर्ण दस्तावेज है। जिसे सहेजकर बार-बर पढ़ा जा सकता है। इसके लिए 'कला समय' के संपादक श्री भंवरलाल श्रीवास सहित उनकी पूरी टीम को हृदय से साधुवाद और नमन।

अब एक व्यक्ति अनुभव- बात सन् 1975-76की है जब अपनी किशोर अवस्था में हरि भाऊ से लगभग रोज सुबह मैं कुछ क्षणों के लिए मिलता था। उस समय मेरा दैनिक अखबार वितरण का कार्य था और मैं श्री वाकणकर जी के यहाँ रोज सुबह स्वदेश अखबार देने जाता था। अक्सर होता यह था कि वे मुझे सुबह-सुबह अपने घर के आँगन में मिल जाते थे और मैं उन्हें अखबार देता हुआ सरपट निकल जाता था बस... ! बमुश्किल इस दौरान पाँच-सात बार ही चंद शब्दों का आदान-प्रदान हमारे बीच हुआ होगा। एक तो अपनी किशोर अवस्था, उस पर पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर साहब की अत्यंत प्रभावशाली सादगी, मुझे कभी आभास ही नहीं हुआ कि मैं रोजाना किन महापुरुष के दर्शन का लाभ ले रहा हूँ... ! परंतु यह बात अवश्य थी कि उनके पास जाने पर किसी तपस्वी से मिलने-सी अनुभूति होती थी। सचमुच वे एक दिव्य तपस्वी थे।

कला जगत के ऋषि पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर के श्री चरणों में कोटि-कोटि नमन के साथ यह शब्दांजलि अर्पित है।

- कांकरिया परिसर, अंकपात मार्ग, उज्जैन (म.प्र.) 456006
मो. 9893009932

पर्यटन विकास समिति, झालावाड़ (राज.)

(संस्कृति, इतिहास एवं समाज सेवा के प्रति समर्पित)

गतिविधियाँ

1. **झालावाड़ स्थापना दिवस प्रति वर्ष 8अप्रेल, झालावाड़ गौरव सम्मान सहित 15 अन्य विशिष्ट प्रतिभा सम्मान।**
2. **भवानीनाट्यशाला स्थापना दिवस- 16जुलाई / रैन बसेरा स्थापना दिवस - 29 अगस्त / झालावाड़ संग्रहालय स्थापना दिवस- 1 जून / गागरोन विश्व धरोहर दिवस - 21 जून के भव्य आयोजन, संगोष्ठी एवं प्रतिभा सम्मान के आयोजन।**

दिनेश सक्सेना	जितेन्द्र जैकी	ओम पाठक	ललित शर्मा
अध्यक्ष	महासचिव	संयोजक	वरिष्ठ उपाध्यक्ष

भगवती प्रसाद मेहरा, कन्हैयालाल कश्यप, अलीम बेग, लक्ष्मीकान्त शर्मा, डॉ. विक्रम टांक, लक्ष्मीकान्त पहाड़िया कल्लू खां, अभय सिंह सिसोदिया, सत्यप्रकाश शर्मा

निसा लेला की कविताएँ

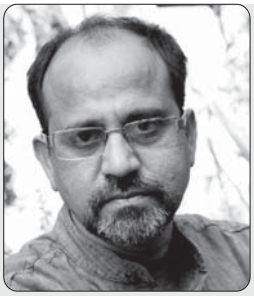

अनुवाद : मणि मोहन

प्रो. मणि मोहन अनुवाद के क्षेत्र में लंबे समय से सक्रिय हैं। अनुवाद के अलावा वे समकालीन हिंदी कविता के समर्थ कवि भी है। अनुवाद के माध्यम से वे हमें विश्व साहित्य की विरासत और हलचल से अवगत कराते रहते हैं।
सम्प्रतिः शा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय गंज बासौदा में अंग्रेजी के प्राध्यापक। मो.- 09425150346

जन्म : सन 1972

तुर्की की युवा कवयित्री निसा लेला इस्तम्बूल (तुर्की) से हैं और समकालीन तुर्की कविता की महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। तुर्की की अनेक चर्चित पत्रिकाओं में वे लगातार प्रकाशित होती रहती हैं तथा एक पत्रिका की संपादक भी हैं। उन्होंने बच्चों के लिए भी कविताएँ और कहानियां लिखीं हैं। यहाँ प्रस्तुत कविताओं का अंग्रेजी अनुवाद ख़ुद निसा ने किया है।

भूख

ओ नदी उड़ेल रहे हो तुम मेरे हृदय में
उससे इलाज नहीं होगा
और न इन पहाड़ों से छोड़े जा रहे हैं
अनंतता के वायदों के साथ
मुझे तुम्हारे इन दरख़्तों के बारे में भी
कुछ नहीं कहना
जो मीठे सेव फल देते हैं
फिर भी उदासी की एक सुरंग है
मेरे भीतर का खालीपन नहीं भरता...

हकीकत सामने है
शोर उठ रहा है
दीवार की तरह
और मैं जहां हूँ
वहां उम्मीद पिघल रही है
किसी मोमबत्ती की तरह...

राजेन्द्र नागदेव

यह एक शब्द 'जीवन' जो तुम बुनते हो
और जिस ईश्वर को
टपकाते हो शहद से
मेरा इलाज नहीं कर पायेंगे...

मेरी उजाड़ गली के बच्चे
भूख से बिलख रहे हैं।

गोलियों की आवाज़ें और चिड़ियों की चहचहाहट

मेरी वेदना के भूगोल में
अब गोलियों की आवाज़ें
चिड़ियों की चहचहाहट से ज्यादा तेज हैं...
सारे काम आधे-अधूरे स्थगित;
प्रेम, लोकतंत्र, सुंदरता, शांति इत्यादि...
जीवन के ब्लैक बॉक्स में
रक्तरंजित पर नासमझ से
टूटे और अजैविक शर्म वाले
संवाद मौजूद हैं
– लीजिए कुछ अच्छे युद्ध
– अच्छे हथियार लीजिये, सर
– सीमाएं मुक्त हैं,
कंटीले तारों और घृणा के लिए
– मुक्ति, सर

मनुष्य अपने सिवाय
सबका सामना करने को तैयार है
फिर वह उठाता है खजूर, कबूतर
और जैतून की टहनी
और उठाकर फेंक देता है
एक अदृश्य कुए में!
वहां चिड़ियों कलरव है
अतीत और भविष्य का विरोध दर्ज करता
गोलियों की आवाज़ें
प्रजातियों को पवित्र करती हैं।

सभ्यताओं द्वारा उत्पादित खूनी कमीजें
पड़ी रहेंगी ढेर की तरह
उन किताबों पर
जो वेदना की कुल्हाड़ी पर रखी हुई है;
मैं अब कुछ भी नहीं लिखना चाहती!
बिम्ब लाशें उगलते हैं।
जो मैंने लिखा मनुष्य नहीं उनकी छायाएं हैं।

अब गोलियों की आवाज़ें
चिड़ियों की चहचहाहट से ज्यादा तेज हैं
मेरी वेदना के भूगोल में...
मेरी जान, सिर्फ तुम्हारा दिल ही
वो जगह है जहां मैं टिकी रह सकती हूँ।

■

वीरेन्द्र आस्तिक के गीत

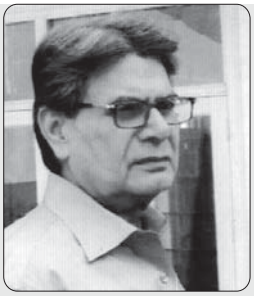

वीरेन्द्र आस्तिक

जन्म : 15 जुलाई 1947 कानपुर जनपद का एक गाँव 'रूरवाहार'
प्रकाशन : वीरेन्द्र आस्तिक के गीत (स्मारिका), परछाई के पाँव (गीत-गजल), आनंद, तेरी हार है, तारीखों के हस्ताक्षर, आकाश तो जीने नहीं देता, दिन क्या बुरे थे, गीत अपने ही सुने (प्रेम-गीत)।
एल-60 गंगा विहार, कानपुर-208010 (उ.प्र.)
दूरभाष : मो. : 09425474755

आँसू की संस्कृति

भावुक ही
दुखिया-मन जाने
आँसू सत्य जनाए

जब-जब चोट पड़ी हिरदय पर
अँखियाँ भर-भर आईं
इस जग में रोए रघुपति भी
समझ काम कब आई

संबंधों की मोह-कथा को
रो-रो व्यथित बताए

बाज़ारों में खोजे मन, पर
भावुक व्यक्ति न मिलते,
बुद्धिवाद की इस आँधी में
हृदयवाद कब चलते
कहने भर को नाते-रिश्ते

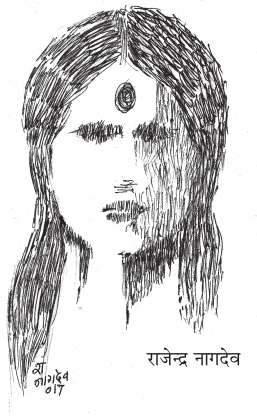

राजेन्द्र नागदेव

मतलब आँखे मिलाए

नारी-रूप भवानी, यानी
करुणा होए बल है
वसुन्धरा की सारी सुषमा
का कारण तो जल है

अर्थ बताने में आँसू के
संस्कृति निज गुण गाए।

नादकंठी

घर कि जैसे एक सितार है
और वह दिन भर बजा करता
एक स्वर यदि बेसुरा हो
कान सबके चौंकते हैं
जो सही स्वर है, उसी को
सब पकड़ना चाहते हैं

और वह कल्पित सुरीला स्वर
तार घर भर के कसा करता
फूल से मन खूब महकें
भाव अच्छे याद आएं
तार सातों मिल के कोई
एक सुमधुर राग गाएं

घर कभी तो राग बहार है
सकल दिन उत्सव मना करता
गीत में, संगीत में जब
शब्द, स्वर इकतान होते
अर्थ की औ' भाव की लय
के निनादित बोल होते

घर की जैसे नादकंठी है
जो सभी का दिल छुआ करता।

दिनभर गूँथे शब्द

दिन भर गूँथे शब्द,
रिझाया एक अनूठे छन्द को

रस्ते में देखा, श्रमिकों का
खेतों से रिश्ता प्यार का
जैसे दुल्हन का दर्पण से
रिश्ता होता सिंगार का

देखा बीज पड़ी धरती भी
महसूसे आनंद को
एक अनूठे छन्द को

श्रम से थका, सूर्य घर लौटा
पथ अगोरती मिली जुन्हाई
खूद रहा खूँटे पर बछड़ा
गइया ने हुंकार लगाई

स्वस्थ सुबह के लिए चाँदनी
कसती है अनुबन्ध को
एक अनूठे छन्द को

सूर्य, अरुण सिन्दूरी जागा
कमनीया ने ली अँगड़ाई
नए जोश ने छुआ धरा को
गौरैया फुदकी अँगनाई

हुकर उठी बैलों की जोड़ी
चलो चलें भवद्वन्द्व को
एक अनूठे छन्द को

■

विजय बहादुर सिंह की कविताएँ

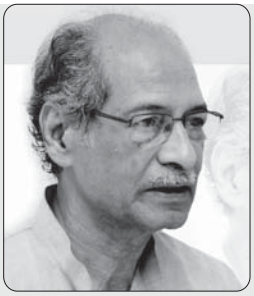

विजय बहादुर सिंह

जन्म : 16 फरवरी, 1940, जयमलपुर, उ.प्र.
प्रमुख कृतियाँ : मौसम की चिट्ठी, पृथ्वी का प्रेमगीत, पतझर की बांसुरी, भीम बैठका, शब्द जिन्हें भूल गई भाषा, भीम बैठका तथा अन्य कविताएँ, तुम जो सचमुच भारत भाग्य विधाता हो, आपके लाये हुए दिन, अर्ध सत्य का संगीत।
29, निराला नगर, दुष्यंत कुमार मार्ग, भोपाल-462003 म.प्र.
दूरभाष : मो. : 09425030392

वापसी

लौटा हूँ
शताब्दियों का अँधेरा पार कर
विंध्याचल और सतपुड़ा के
जंगलों पहाड़ों से होकर

धीरे-धीरे भूल रहा हूँ
लड़खड़ाहटों का रुदन
काँटों की चुभन और चीख
उन फुफकारों को भी
जिनसे काँप काँप उठती थी रूह
थरथरा कर पसीने-पसीने हो जाती थी देह
अब समतल में हूँ
एकदम अपने करीब
अपनी आत्मा के पास
गुपचुप की बतकहियों के संगीत में

नदी का दुःख

नदी अब किसी से कुछ नहीं कहती
यहाँ तक कि अपने तट से भी
एक खामोशी ठहरी हुई है
अस्तित्व की लकीर सी
उसी से कभी-कभी
फूटती है आह
जैसे कि श्मशान अकेले में
बात कर रहा हो खुद से
नदी का यह झेलना
किसे नहीं मालूम
मछलियाँ जो कभी-कभी
उसके पानी में लेती थीं उछाल
बूँदें जिनसे छककर
बतियाता करता था मेघ
सब के सब
भूल गए हैं नदी का दुख

जिज्ञासा

यह चुप्पी है
या विश्व पुरुष की क्रियाओं का
विनम्र अस्वीकार
पृथ्वी ! क्या यही है
जिसे कर रखा है तुमने
अंगीकार

प्यार

अपने ही मुँह पर मारता तमाचे
अपने ही जूतों से पीटता अपना सिर
अपने ही चेहरे पर थूकता
अपने ही कलंकों से करता तकरार
हमने भी किया अपनी जिन्दगी से
प्यार

एक दिन

अपनी ही आँखों में
लग जाते हैं गिरने
अपनी ही आग में
होने लगते हैं राख
अपनी ही दिनचर्या के कब्रगाह में
मर्सिया पढ़ने लग जाते हैं अपना

विश्वास

विश्वास
एक ऐसी खूँटी है
जिस पर टँगे हैं
सबके कपड़े
उसके भी
जो विश्वास घाती है

स्मृति

जलाया है मैंने तुम्हें
सँझबाती की तरह
बुझ मत जाना
दुखों से घिरती
इस रात में .... ।

■

ज़हीर कुरेशी की गज़लें

ज़हीर कुरेशी

जन्म : 5 अगस्त, 1950 को चन्देरी (अशोकनगर, म.प्र.)
प्रमुख कृतियाँ : एक संचयन सहित, दस ग़ज़ल-संग्रह प्रकाशित। ग़ज़लकार के ग़ज़ल-रचना अवदान पर दो आलोचना-पुस्तकें। एक संस्मरण-संग्रह और एक संपादित पुस्तक भी। हिन्दुस्तान के पहले ग़ज़लकार, जिनकी कुल 25 ग़ज़लें पाठ्यक्रम में शामिल।
108त्रिलोचन टावर संगम सिनेमा के सामने गुरनबक्श तलैया पो.ऑ.जीपीओ, भोपाल- 462001
मो. 09425790565

राजेन्द्र नागदेव

(एक)

मुख्य- धारा में रहने की कीमत मिली,
वो जहां भी गए, उनको इज्जत मिली।

चाह कर भी, विमुख हो न पाई कभी,
जिन्दगी भर जो मुझसे असहमत मिली।

हों 'किचिन' में या मँजने के स्थान पर,
बरतनों में झगड़ने की आदत मिली।

मैं तो इससे अधिक कुछ न कर पाऊँगा,
एक दिन की अगर बादशाहत मिली।

माँ, पिता, पुत्र, पत्नी से मित्रों तलक,
कुछ न कुछ सबको उनसे शिकायत मिली।

करती रहती है सच- झूठ के फैसले,
सबके अंतस में ऐसी अदालत मिली।

हम ही जीवन को मुश्किल बनाते रहे,
जिन्दगी तो बहुत खूबसूरत मिली!

(दो)

हम समझते थे कि जाएगी सरोवर की तरफ,
आत्म-हत्या को नदी दौड़ी समंदर की तरफ!

शाँति, सुख, आनंद के क्षण प्राप्त करने के लिए,
कोई बाहर को चला तो कोई भीतर की तरफ़।

उनको अवसर भी कभी देता नहीं है अहमियत,
दौड़ कर जाते नहीं जो लोग अवसर की तरफ!

इसलिए भी तीर ने छोड़ी नहीं अपनी कमान,
घर से निकला तो कभी लौटा नहीं घर की तरफ!

प्रश्न चाहे घर में हो, दफ्तर में हो, संसद में हो,
प्रश्नकर्ता देखता रहता है उत्तर की तरफ़।

वायुयानों से उसे करनी पड़ेगी दोस्ती,
पंख बिन उड़ना हो जिसको नील-अम्बर की तरफ।

अपने पुरखों की विरासत के बिना हम कुछ नहीं,
इसलिए हम लोग हैं अपनी धरोहर की तरफ़।

(तीन)

सच बोलते हुए वो परेशान - सा लगे,
कविता में झूठ बोलना आसान सा लगे।

उत्सव के रंग-रेलियाँ होने लगी समाप्त,
अन्तस में झाँकते ही बियावान सा लगे।

हर माह पति से पाएगी रूपए वो दस हजार,
निर्णय 'तलाक' का भी समाधान सा लगे।

खुद पर विभिन्न लोगों के वक्तव्य सुन के... आज,
सम्मान- सा लगे, कभी अपमान सा लगे।

मेहमान ताकने लगा अचरज से उसकी ओर
अपने ही घर के बीच जो मेहमान - सा लगे।

लगती है तेज भूख पे कुछ देर यूँ लगाम,
भूखे को चाय पीना भी जलपान - सा लगे।

भारत का नागरिक तो वो लगता नहीं कहीं,
हिन्दू लगे, कभी वो मुसलमान सा लगे।

■

आलेख

ऋतुएँ और संगीत पक्ष

'पधारो मेघ'-वर्षा के रंग बंदिशों में

सविता गंगा

ऋतु विषय पर गहन चिंतन करने के बाद मेरा दृष्टिकोण इसे संगीत के माध्यम से तथा संगीत के समय सिद्धांत के अंतर्गत राग और ऋतुओं का संबंध जो प्राचीन संगीत में पाया जाता है उस ओर अग्रसर हुआ। संगीत ग्रंथों में ऋतु सिद्धांत की धारणा को देखते हुए पांच प्रकार की साम की उपासना का विधान है। पूर्वीय वायु हिंकार है। मेघ जो उत्पन्न होता है वह प्रस्ताव और जो बरसता है वह उद्गीथ है। जो धमकता और गरजता है वह प्रतिहार है तथा जब वर्षा समाप्त होती है वह निधन है। संगीत ऋतु प्रसाधन का साधन है।

भारतीय संगीत मनीषियों ने राग-रागिनियों की स्थापना ऋत और कालखंडों के अंतर्गत करके संगीत कला को उच्च स्थान प्रदान किया है। कुछ रागों की उत्पत्ति ऋतुओं के अनुसार, इसका मूल उद्देश्य प्रकृति की लय के रहस्य पर आधारित है। भारतीय संगीत में ऐसे प्राकृतिक स्वभावजन्य गुण होते हैं जो विशेष ऋतुओं से संबंधित हैं। इसी कारण प्राचीन संगीत का गायन समय-सारणी के साथ ऋतुओं के अनुसार बद्ध भी था और ऋतुओं के अनुसार गायन होता था।

भारतीय ऋतुओं की रसमयी व आलौकिक प्रकृति से भारत का साहित्य एवं संगीत समान रूप से प्रभावित होकर प्रेरणा लेता रहा है। सभी ऋतुओं की अलग पहचान व अपना आकर्षण है। साहित्य एवं संगीत दोनों ही कलाएं भावात्मक है। जिस प्रकार साहित्यकार प्रकृति चित्रण का दृश्यात्मक व भावात्मक चित्रण आत्मसात कर हृदय में अपनी लेखनी द्वारा अर्थात शब्दों के माध्यम से प्रकट करता है उसी प्रकार संगीतकर राग व स्वर के लगाव द्वारा काकू भेद द्वारा स्व, दीर्घ स्वांतर द्वारा शब्दों, दशयों तथा भावों को साकार करता है। स्वरों में भिन्न-भिन्न प्रकृति प्रतीत होने के कारण ही प्राचीन आचार्यों ने भिन्न-भिन्न प्रकृति के राग-रागिनियों की रचनाएं की हैं तथा प्रकृति 6 ऋतुओं में विभाजित की गई हैं। प्रकृति में होने वाले परिवर्तनों का संगीत से क्या संबंध है और उनका क्या महत्व है इस व्यापक विषय पर हमें कुछ अलग दृष्टि डालने का प्रयास करना चाहिए। ऋतुओं की तुलना प्राणों से की गई है। हिंद कलैंडर के अनुसार 12 महीने और छः ऋतुओं का वर्णन मिलता है। बसंत ऋतु को प्राण शक्ति से जोड़ा गया है। ग्रीष्म ऋतु को वाक से, वर्षा ऋतु को चक्षु से, शरद ऋतु को श्रोत्र से, हेमंत ऋतु को मन से और शिशिर (विंटर) को प्राणों का सम्मिलित रूप कहा गया है। 6ऋतुओं की उत्पत्ति का हमारे शरीर के छह अंगों से भी तादात्म्य है।

संगीत पक्ष हमारे मन मस्तिष्क को, चेतना, स्फूर्ति एवं शांति प्रदान करता है। संगीत शब्द सुनते ही सभी के हृदय में सर्वप्रथम गुनगुनाहट उभरती है। किसी भी गीत को काव्य की आवश्यकता होती है। हमारे जीवन में काव्य का अत्यंत महत्व है। संगीत के लिए जिन रचनाकारों ने काव्यों की रचना की और उन काव्यों के बोलों को बंदिशों में बांधा वे रचनाकार कितने अद्भुत कलाकार होंगे जिन्होंने प्रकृति को अंतर्मन से महसूस किया। रचनाकारों द्वारा रचित काव्य ऋतु सूचक होते हैं, उनके लिखित काव्यों से ही तो हम पक्षियों के स्वरों को, हवा की सरसराहट को बिजली की कड़कड़ाहट को, उदास मन की भावना को या खिलखिलाती धूप को समझ पाते हैं। काव्य के बोलों के बाद ही राग, सुर लय एवं ताल का समागमन होता है। तभी संगीत की परिभाषा पूर्ण होती है।

जिस प्रकार काव्य शास्त्र में ऋतु वर्णन तथा बारह मासा की परंपरा है उसी प्रकार भारतीय संगीत में ऋतु चक्र का निधान है। ऋतु के अनुसार पुरुष रागों का प्रयोग संगीतशास्त्रियों द्वारा अनुमोदित है। ऋतु विशेष में बाह्य वातावरण की समरसता के कारण अनुकूल रसों को ऋतु काल से मुक्त रखने का विधान है। इन ऋतुओं के अनुसार संगीत में रागों को भी बांटा गया है। बसंत ऋतु में राग हिंडोल गाया जाता है। ग्रीष्म ऋतु में राग दीपक, वर्षा ऋतु में राग मेघ/मल्हार, शरद ऋतु में राग मालकंस, शिशिर ऋतु में राग भैरव तथा हेमंत ऋतु में राग श्री का वर्चस्व रहता है।

राज परिवार में अनेक राग-रागिनियां हैं इसलिए विभिन्न ऋतुओं के आने पर फूल खिलते हैं। वर्षा ऋतु पर पानी बरसता है। ऋतुओं के सौंदर्य से उसकी छटा से संगीत को प्रेरणा प्राप्त हुई है। फलस्वरूप मेघ, मियां मल्हार जैसी रागों की उत्पत्ति हुई तथा इनके स्वरों द्वारा विभिन्न चित्र अंकित किए गए। इन रागों के अतिरिक्त राग देस और राग जयजयवंती की बंदिशों का भी वर्षा ऋतु में उतना ही महत्व है क्योंकि इन रागों की प्रकृति तथा शब्द चित्रों का वर्षाकालीन वर्णन अन्य रागों की प्रकृति तथा शब्द चित्रों में बहुत साम्य है। इनकी विषयवस्तु वर्षा संबंधी होने से वर्षा कालिक रागों में रखा गया है। काव्य कला, संगीत कला और चित्रकला में प्रायः सभी ऋतुओं की रचनाएं देखने को मिलती है। तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो वर्षा संबंधी रचनाओं के सामने अन्य रचनाएं बहुत ही अल्प संख्या में हैं।

प्रकृति ना सिर्फ मानव बल्कि इसके प्रांगण में विहार करने वाले विभिन्न पशु-पक्षी, नानाविध वृक्षों, लताओं व फूलों का आकलन करती है अपितु उनके स्वभाव व प्रवृत्तियों से भी परिचय कराती है।

पशु-पक्षी भी विभिन्न स्वरों में वार्तालाप करते हैं और अपने प्रेम, ईर्ष्या, भय, क्रोध, द्वन्द्व, विजय, गर्व आदि संवेदनाओं को अभिव्यक्त करते हैं। मानव को भी सप्तस्वरों की प्रेरणा प्रकृति से ही प्राप्त हुई है। भाषा जिस सीमा तक नहीं पहुँचती, संगीत पहुँच सकता है। संगीत से सुसंस्कृत होकर शास्त्र का रूप लिया होगा। उदाहरण के लिए कहते हैं- मयूर षड्ज बोलता है चातक ऋषभ, बकरी गंधार, क्रोच्च मध्यम, कोकिला पंचम, अश्व धैवत तथा गजराज निषाद बोलता है। मौसम हमारे शरीर, मन और भावनाओं को प्रभावित करता है। मानव जीवन प्रकृति का अभिन्न अंग है। वह प्रकृति जिसमें सभी जीव-जन्तु, प्राणी, पशु-पक्षी वास करते हैं, चाहे वे जल में रहते हों, थल में रहते हों या नभ में विचरण करते हों। प्रकृति के कालखंडों से सभी जुड़े हुए हैं इसलिए कालखंड एवं प्रकृति के मौसम और ऋतुओं का हम सभी प्राणियों के जीवन में विशेष महत्व है।

हर ऋतु प्रकृति की आत्मा है, प्रकृति की देन है। इसीलिए यह हमारी आत्मा से जुड़ी हुई है। हर ऋतु के कालखंड में प्राकृतिक वैशिष्ट्य, विविध दृश्यों, छवियों का समागमन होता है। अत: हमें हर ऋतु में प्रकृतिजगत में होने वाले परिवर्तनों व प्रतिक्रियाओं का हमारे मानव जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का आकलन करना जरूरी है। सृष्टि में अलग अलग मौसम जैसे सर्दी गर्मी, मानसून दिखाई देते हैं।

सभी ऋतुओं में से वर्षा ऋतु को अपने संगीत से जोड़ें तो वर्षा ऋतु का वर्णन आते ही जहन में एक ही ख्याल आता है जून का महीना अर्थात् ग्रीष्म ऋतु का समापन और वर्षा ऋतु का आगमन। विदित है कि प्रकृति का सभी जीव जन्तु, प्राणियों से घनिष्ठ संबंध होता है। वर्षा ऋतु के आगमन की बेला जैसे ही शुरु होती है सर्वप्रथम कोयल अपनी मधुर वाणी में इशारा देने लगती है। उसकी सुरीली कुहु और मयूर का लुभावना नृत्य इस वर्षा ऋतु की खासियत है। आकाश में काली घटाओं को देख किसानों का मन रूपी मयूर बोलने लगता है। ठण्डी हवाओं की सरसराहट को सुनते ही जंगल के मोर नाचने लगते हैं और हल्की हल्की बूंदों की टिप टिप आवाज को सुनते ही मेंढक की आवाज जो पूरे वर्ष में सुनाई नहीं देती, लगातार टर्र टर्र की आवाज सुनाई देती है। बिजली की कड़कड़ाहट से विरहणियों का मन घबराने लगता है। वन उपवन, पेड़ पौधे पत्तों से लद जाते हैं। बादल निरंतर अपना आकार और रंग बदलते हैं। जहन में प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों। क्योंकि वर्षा ऋतु जीवन-दायिनी ऋतु है। वर्षा ऋतु में ही प्रकृति भी अपनी सभी कलाओं और वैभव का प्रदर्शन करती है।

वर्षा ऋतु में अधिकांश देखा गया है कि राग मल्हार का वर्चस्व रहता है। इसलिए राग मल्हार गाने की प्रथा सी है क्योंकि राग मल्हार ऋतु प्रधान राग है। जिसमें आकाश, मेघ, बिजली, दादुर, कोयल का वर्णन होता है। मल्हार का अर्थ होता है जो मल का हरण करे। वर्षा के कारण पूरी सृष्टि स्वच्छ और निर्मल हो जाती है और एक प्रकार की ठंडक महसूस होती है। मल्हर का दूसरा अर्थ यह भी है कि ईश्वर का वह रूप जो हमारी नैया को भवसागर से पार लगाए और मल्हार नाविक को भी कहते हैं जो पानी की सघनता, लहरों की उछालता तथा पवन के वेग से बिना घबराए, हिचकोले खाती हुई आपकी नाव को मंजिल तक पहुंचाता है।

वर्षा रानी आकाश से रिमझिम रिमझिम की बूंदों के साथ बरसती है। आकाश के विभिन्न बदलते रंगों के बाद, धीरे-धीरे प्रकृति से जुड़ी हर वस्तु, प्राणी, पक्षियों का दृश्य सामने आने लगता है। इसलिए वर्षा ऋतु की हर बंदिशों में कोयल, पपीहा, बादल, बिजली, पवन जैसे शब्द सुनाई देते हैं और विभिन्न रागों में इनका महत्व अलग ढंग से निखर के आता है।

वर्षा ऋतु में बहुत ही पवित्र त्यौहार जैसे कबीर जयंती, जगन्नाथ पुरी उत्सव, गुरु पूर्णिमा मनाए जाते हैं। वर्षा ऋतु एक जीवदायनी ऋतु होने के कारण यह किसानों के लिए माता के समान होती है। धन धान्य जैसे- रबी/खरीफ/जेड जैसी फसलें बारीश को देखकर ही बोई जाती है।

वर्षा एक प्रकार का संघनन है। वर्षा एक ही प्रकार की न होकर उसके विभिन्न प्रकार, विभिन्न रंग होते हैं। वर्षा संवहनीय होती है, कहीं कहीं पर्वतकृत तो कहीं चक्र वतीय होती है। इसलिए विभिन्न प्रांतों में उसकी जलवायु के अनुसार पर्वत, पठार, मैदान, नदियां, घने जंगल तो कहीं रेगिस्तान और सागर इसके वैविद्य के प्रमाण हैं। शायद इसलिए संगीत में इन विभिन्न प्रांतों की अपनी-अपनी संस्कृति के कारण इसे अलग-अलग प्रकार के गीतों में प्रस्तुत किया जाता है।

संस्कृति की मूल धारा को एक अखंड रूप में रखा गया है। इन गीतों को अलग-अलग नाम दे दिए गए हैं-

छत्तीसगढ़ का सुआ गीत, नेपाल में सोरठी, उत्तर भारत में झूला, कजली, चैती, महाराष्ट्र में लावणी, गुलरात में गरबा, बुंदेलखंड में लेद गायन आदि।

मान्यता है कि भादों की कृष्ण पक्ष की तृतीया को कजली देवी की पूजा व व्रत की प्रथा है। कजली का विषय होता है- संयोग, वियोग से गीतों का श्रृंगार करना। झूले पर झूलते हुए राधा-कृष्ण इन

गीतों के अधिनायक होते हैं।

प्रकृति से जुड़ी हुई वर्षा ऋतु का संबंध हमारे देवी-देवताओं के जीवन से भी जुड़ा है- इसका उदाहरण हमें किष्किंधा काण्ड में श्री राम सीता के जीवन का मिलता है। जब सीताजी श्री राम से बिछड़ गई थी और श्री राम बिल्कुल अकेले दु:ख में पम्पा झील के तट पर सीता की स्मृतियों को स्मरण कर रहे थे उस वक्त वर्ष ऋतु थी और पूरी कायनात श्री राम के साथ अश्रुपात कर रही थी। यही कथन तुलसीदास जी की रामचरित मानस के दोहों में भी वर्णित है। वैसे ही एक अवतार में हरिवंश में देवी रुकमणि और श्री कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न और प्रभादेवी तथा दूसरे अवतार में कामदेव और रति के विरह का वर्णन इसी वर्षा ऋतु में पाया गया है।

वर्षा ऋतु प्रेम की भी प्रतीक मानी जाती है। वर्षा ऋतु में संत मीराबाई के आनंद की कोई सीमा नहीं थी। पूर्ण रूप से कृष्णमय होकर एवं कृष्ण प्रेम मं मगन होकर बारिश में भीगते हुए प्रकृति में हो रहे चमत्कृति का अनुभव कर अपने सांवरे को पुकारती थी।

महाकवि कालीदास की रचना 'मेघदूतम्' में एक यक्ष की कथा का भी उल्लेख है जिसका सार यह है कि जब यक्ष को कुबेर अल्कापुरी से निष्कासित कर देता है तब वह यक्ष अकेला रामगिरी पर्वत पर निवास करते हुए अपनी प्रेमिका को याद करता है। उसका मन अपनी प्रेमिका को संदेश भेजने के लिए व्याकुल हो उठता है पर संदेश भेजे तो भेजे कैसे उस वक्त वर्षा ऋतु का समय था और वह यक्ष अपनी भावनाओं को मेघों के माध्यम से संदेश के रूप में भेजना चाहता था।

संगीत और ऋतुओं का बहुत ही घनिष्ठ संबंध है।

- मुंबई
मो.: 9967314911

धर्म एवं कला उद्‌भव एवं अन्तर्सम्बन्ध

प्रो. डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव

संसार में मूर्ति का प्रतीक जितना शक्तिशाली रहा है, उतना अन्य कोई प्रतीक नहीं। विराटता के भय और कौतूहल से भगवान और धर्म का उदय हुआ। एक ओर जहाँ तक दृष्टि जाए वहाँ तक विस्तृत नील गगन, अथाह सागर, दुर्गम वन और अत्तुंग पर्वत-श्रेणियों ने मनुष्य को अपनी लघुता से परिचित कराया, वहीं दूसरी ओर चिलचिलाती धूप, घटाटोप वर्षा, बादल, सब कुछ बहा ले जाने वाली बाढ़ तथा पल भर में सृष्टि-संहार कर देने वाले भूकंप और आँधी-तूफान ने मनुष्य को निरीह बना दिया। प्रकृति की इस विविध पक्षी अदम्य शक्ति से त्राण पाने के लिए मनुष्य ने उसके समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। भय से भगवान की परिकल्पना संभव हुयी और उस भगवान को अपने अनुकूल बनाने के लिए नाना प्रकार का पूजा-प्रार्थना प्रारंभ हुयी। यहीं पर भक्ति का उद्‌भव हुआ। जीवन को दुखों-कष्टों से छुटकारा दिलाकर सुखी बनाने के लिए मनुष्य ने जिस अगोचर भगवान की शरण ली, वह मनुष्य की आवश्यकतानुसार धीरे-धीरे नाना रूप धारण करता चला गया। और एक विशाल देवमण्डल के रूप में विकसित होता गया। आगे चलकर मनुष्य में अपने भगवान के प्रति श्रद्धा और भक्ति के भाव स्थाई होते गये और उसने उस अगोचर भगवान को साकार बनाया, मूर्ति का उद्‌भव हुआ। सृजन, पालन और संहार के प्रतीक ब्रह्मा, विष्णु और शिव उसी भगवान (ब्रह्म) के अवतार माने गये। परन्तु सृष्टि का मूल कारण माँ अथवा देवी माँ शक्ति के रूप में कल्पित होकर सर्वप्रथम मूर्तिमन्त हुयी। धीरे-धीरे जग के सिरजनहार इन देव-शक्तियों के नाना रूप मनुष्य ने सिरजे, उनका मनोहारी श्रृंगार किया और उनकी पूजा-अर्चना की। इस पूरी प्रक्रिया में धर्म और कला समाहित होती गयी।

देश-विदेश के कला एवं इतिहास के विभिन्न विद्वान ऐसा मानते हैं कि राष्ट्रीय जीवन के ही समान भारतीय कला का स्वरूप भी मुख्यत: धर्म-प्रधान है। सी.ई.एम.जोड का मत है कि भारतीय कला ने अपने ससीम अस्तित्व से असीम का बोध कराने का प्रयास किया है। कुमार स्वामी तो धर्म और कला को एक ही अनुभूति के दो नाम मानते हैं- 'टू नेम्स ऑफ वन एक्सपीरियन्स' (Two names of one experience)

धर्म का जो सैद्धान्तिक स्वरूप है उसका सम्बन्ध आध्यात्मिकता से है। वह जीवन को पारलौकिक जीवन की ओर से जाता है। वे विचार अथवा भावनाएँ मूलत: धार्मिक और आध्यात्मिक हैं जिनका प्रकाश भारतीय कलाकार अपनी मूर्तिकला अथवा चित्रकला के माध्यम से करता है।

अन्त में इन देव-मूर्तियों के निर्माण के लिए शास्त्र रचे गये। मूर्तियाँ बनायीं भक्तों ने और उनके निर्माण के नियम बनाये विद्वान पण्डितों ने। हमारे संग्रहालयों में संरक्षित-प्रदर्शित देवी-देवताओं की हजारों कालजयी मूर्तियाँ उनके उद्‌भव और विकास की इसी कहानी को शिल्पशास्त्र के सुकर लक्षणों के माध्यम से अभिव्यक्त करती है और अपनी पृथक्-पृथक् पहचान दर्शाती है।

-1-बी, स्ट्रीट 24, सेक्टर 9, भिलाई-490009 (छ.ग.)मो. 09827847377

आलेख

मध्यप्रदेश की महानतम वस्त्र शिल्प कला- चंदेरी साड़ियाँ

मजीद खाँ पठान

सत्य कहा गया है कि आवश्यकता आविष्कार की जननी है और इंसान की फितरत में शामिल है उक्त गुण। मानव को जब जिस समय, जिस चीज की जरूरत होती है वह उसे पाने के लिए उसका ईजाद करना प्रारंभ कर देता है। इतिहास गवाह है काल और परिस्थितियों ने मनुष्य को समय मांगानुसार वैसा ही आचरण करने को विवश भी किया है।

भारत एवं म.प्र. में पाए जाने वाले शैलाश्रय अथवा शैल चित्र साक्षी हैं इन तथ्यों के, कि अनादिकाल में मनुष्य नंगा घूमता-फिरता था। समय आगे बढ़ा वह अपने तन को ढकने के लिए छाल-पत्तों का उपयोग करने लगा। धीरे-धीरे और सोच विकसित हुई और कपड़ा का जन्म हुआ। तब से लेकर आज तक वस्त्र कला क्षेत्र में नित्य नए प्रयोग जारी हैं।

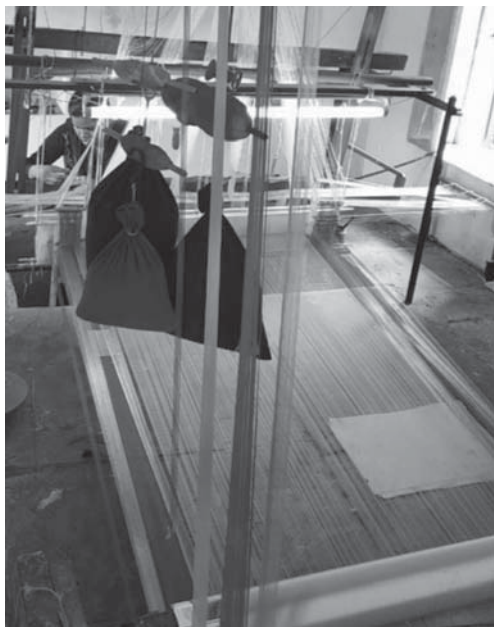

महाभारत काल में भगवान श्रीकृष्ण के प्रबल विरोधी रहे चेदि नरेश शिशुपाल की राजधानी रही एवं 10-11वीं सदी से निरंतर आबाद यह पुरातन नगर एक नहीं अनेक ऐतिहासिक कारणों के अलावा सदियों से जीवित हस्त शिल्पकला के कारण आज राष्ट्रीय ही नहीं अपितु विश्व धरोहर सूची में स्थान पाने के लिए यूनेस्को के समक्ष टेक्सटाइल श्रेणी में विचाराधीन होने के कारण अंतराष्ट्रीय स्तर पर चर्चित बना हुआ है।

म.प्र. जिला अशोकनगर अंतर्गत स्थित ऐतिहासिक एवं पर्यटन नगर चन्देरी यूँ तो अपने किला, महल, गढ़ी-हवेलियां, मठ-मकबरा-मीनारें, दरवाजे, मंदिर-मस्जिद, कुंआ-आवड़ियां, लोक गायक बैजू बावरा, शैलचित्र इत्यादि उल्लेखनीय पक्ष को उजागर करने में समक्षता हासिल किए हुए है।

अलावा इसके नगर की सांस्कृतिक विरासत हाथ करघा, हस्त शिल्प कला का नायाब नमूना चन्देरी वस्त्र एवं साड़ियाँ-सूट एक अलग ही दास्ताँ बयान करती है। आज यह नगर हस्त शिल्पकला क्षेत्र में पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्राप्त वंशानुगत अनुभव-हुनर के दम पर बुनकरों के माध्यम से हाथकरघा पर निर्मित सुंदर कलात्मक परम्परागत वस्त्र चन्देरी साड़ियों के कारण सब दूर अपनी पहचान स्थापित किए हुए है।

कहा गया है कि वस्त्र मानव समाज संस्कृति और सभ्यता के सूचक ही नहीं वरन् शिल्प परम्परा के सर्वोत्तम उदाहरण हैं। जो मात्र मनुष्य के अंग को ही नहीं ढकते बल्कि हमारे अपने गौरवमयी अतीत की यादों को ताजा कर इतिहास, सामाजिक-सांस्कृतिक पक्ष, लोक संस्कृति आदि विभिन्न पहलुओं को उजागर करने में सहायक सिद्ध होते हैं।

14वीं सदी के प्रथम दशक में ढाका के आसपास स्थित लखनौटि नामक क्षेत्र से आए बुनकरों के माध्यम से इस वस्त्र कुटीर उद्योग ने चन्देरी में अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हुए सर्वप्रथम मलमल नामक कपड़ा का उत्पादन प्रारंभ कर अपनी विकास यात्रा को गति प्रदान कर अपनी रोजी-रोटी प्रंधन का प्रमुख माध्यम बनाया। उस काल में ढाका की मलमल नामक कपड़ा प्रसिद्ध कपड़ों में शुमार हुआ करता था।

चूंकि चन्देरी आए मजदूर-बुनकर भी उसी क्षेत्र से संबंधित थे स्वाभाविक है कि मलमल निर्माण प्रक्रिया भी वही रही जो ढाका क्षेत्र में अपनाई जा रही थी। परिणामस्वरूप ढाका मलमल के साथ चन्देरी मलमल का नाम जुड़ना प्रारंभ हुआ और धीरे-धीरे कपड़ा क्षेत्र में चन्देरी नाम मशहूर हुआ। ढाका और चन्देरी मलमल को लेकर पूर्वकाल में एक कहावत प्रसिद्ध हुई जो आज भी नगर में गाहें-बगाहें सुनने को मिलती है।

ढाका और चन्देरी में, मलमल महीन बनती थी।
पूरे भारत में, चन्देरी की पहली गिनती थी।

समय परिवर्तनशील है। काल और परिस्थितियां, क्षेत्रीय आवश्यकताओं के दृष्टिगत, इससे भी कहीं अधिक चन्देरी में राज कर रहे राजा-महाराजा, राजपरिवार, उच्च वर्ग की मन पसंद अनुसार इस हस्त शिल्पकला द्वारा मलमल नामक कपड़ा के साथ-साथ साड़ी, साफा, पगड़ी, पगला, पेंचें, लुगड़ा, दुपट्टा, सैला-ओढ़नी, धोती, सूती

कपड़ा आदि वस्त्रों का उत्पादन किया जाने लगा। चन्देरी वस्त्र बारीक, पारदर्शी, वजन में हल्के, कशीदाकारी आदि के कारण भारत के विभिन्न भागों में राज कर रहे राजवंश, राजदरबारों में पसंद किए गए।

15वीं सदी में चन्देरी पर राज कर रहे मालवा सुल्तानों द्वारा इस हस्त शिल्पकला को संरक्षण दिए जाने के कारण फलने-फूलने का भरपूर अवसर मिला। चन्देरी वस्त्र अपनी विशेषताओं खासकर महीनता के कारण सुल्तान एवं राजकीय परिवार का पसंदीदा परिधान हुआ करता था।

15-16वीं सदी चन्देरी अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण सामरिक महत्व, राजनैतिक, व्यापारिक तथा सामाजिक महत्ता बरकरार रखे हुए थी। मालवा एवं बुन्देलखण्ड की सीमाओं पर स्थित होने के कारण एवं नगर से गुजरे व्यापारिक मार्ग के कारण यह नगर एक व्यापारिक केन्द्र बनकर उभरा जिसका समस्त व्यापार हस्त शिल्पकला के इर्द-गिर्द घूमता था। चन्देरी-गागरौन राजा मेदिनीराय राजपूत के समय राजस्थान से मारवाड़ी परिवारों का चन्देरी आगमन, साड़ी व्यापार से जुड़ना आज तक जुड़े रहना सफल दांस्ता है।

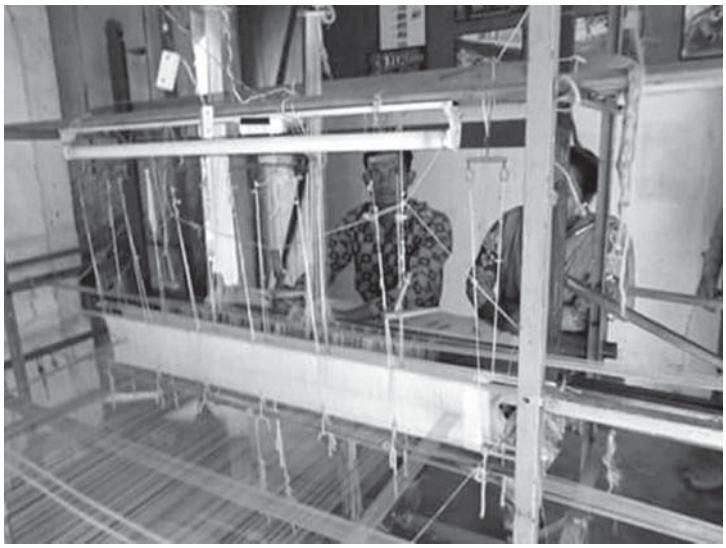

मुगलकाल चन्देरी हस्त शिल्पकला नजरिए से बेहद फायदेमंद साबित हुआ और नगर में राजकीय संरक्षण प्राप्त शाही कारखाना की स्थापना की गई ताकि कपड़ा उत्पादन को और बेहतरीन बनाया जा सके। 17-18वीं सदी चन्देरी में बुन्देला राजा अपना परचम फहरा रहे थे। हस्त शिल्पकला भी उन्नति के नए आयाम तय करते हुए आगे बढ़ रही थी। स्थिति यह बन बैठी कि चन्देरी निर्मित सूती कपड़ा निर्यात किया जाने लगा।

19वीं सदी में जैसे ही चन्देरी ने ग्वालियर रियासत का दामन थामा वैसे ही इस हस्त शिल्पकला के और भी अच्छे दिन आना प्रारंभ हो गए। 1910 ईस्वी में तात्कालीन ग्वालियर नरेश महाराजा श्रीमंत माधवराव सिंधिया ने नगर में वस्त्र उद्योग को बढ़ावा देने हेतु बुनाई प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना कर नई दिशा की ओर ले जाते हुए आगे भी इस शिल्पकला को संरक्षण संवर्धन प्रदान करते हुए निरंतर चलायमान रखा। संयोग देखें जिस भवन में सिंधियाजी ने केन्द्र की स्थापना की थी वर्तमान में भी उसी भवन में शासकीय प्रशिक्षण केन्द्र एवं साड़ी संग्रहालय शासन द्वारा संचालित है।

ऐसा नहीं है कि हस्त शिल्पकला ने कभी बुरे दिन न देखें हों 1944 ईस्वी में ऐसी विकट स्थिति निर्मित हो गई कि बुनकर-मजदूर इस पैत्रिक रोजगार से मुंह मोड़ कर नगर से पलायन करने लगे तब सिंधिया राजघराना ने बुनकरों को आर्थिक सहायता उपलब्ध करा कर इस हस्तकला को लुप्त होने से बचा लिया।

आशय यह है कि चन्देरी साड़ी एवं अन्य कपड़ा एक लम्बी सफल यात्रा तय करते हुए देश आजादी के बाद 1 नवम्बर 1956ईस्वी को म.प्र. राज्य गठन के साथ ही म.प्र. शासन संरक्षण में आकर आज भी हमारे समक्ष अतीत की दास्ता सुनाने में सक्षम है।

चन्देरी साड़ी का महत्वपूर्ण पहलू है उसका निर्माण करने वाले बुनकर-मजदूर आज भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्राप्त वंशानुगत हुनर को बखूबी सजेहे हुए हैं। उन्हें किसी प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती वह तो पारिवारिक वातावरण में धीरे-धीरे सब कुछ सीख लेते हैं। देखी जाने वाली बात यह है कि साड़ी निर्माण प्रक्रिया कुछ इस प्रकार की है कि उसमें बुनकर परिवार के सभी सदस्यों का कुछ-न-कुछ सहयोग अवश्य शामिल हो जाता है।

साड़ी अथवा सूट बनाने की विधि थोड़ी जटिल रहती है। हाथकरघा के ताना-बाना में जब यह सूती-रेशमी धागों का समिश्रण पहुंचता है। उसके पूर्व इन धागों को कई अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। जिसमें एक से अधिक मजदूरों का श्रम शामिल रहता है। अतएव एक बार में बारह साड़ी का कच्चा मटेरियल तैयार किया जाता है ताकि बार-बार की परेशानियों से बचा जा सकें।

रियासतकाल में साड़ी में उपयोग किया जाने वाला धागा-सूत स्थानीय स्तर पर ही हाथ से तैयार कर उसे मजबूती प्रदान करने के लिए स्थानीय जंगली वनस्पति के रस का समावेश किया जाता था। आजकल रेशम, कतान, कांटन-सूती, मसराईज्ड कांटन धागा एवं जरी आदि देश के धागा-जरी व्यापारी उपलब्ध करा रहे हैं।

पूर्वकालीन साड़ी में मात्र असली जरी (सोना-चांदी युक्त) का उपयोग होता था वर्तमान में असली एवं सादा दोनों का उपयोग चलन में है। साड़ी अथवा सूट का मूल्य भी जरी एवं डिजाइन अनुसार कम-अधिक निर्धारित किया जाता है।

साड़ी उत्पादन क्रिया में सर्वप्रथम बुनकर ताना में उपयोग किए जाने वाले रेशम एवं बाना के उपयेाग किए जाने वाले कतान धागा की रंगाई कर आगामी कार्य ताना भरने का करता है। जिसे स्थानीय

स्तर पर बीम भरना कहा जाता है। अधिकतर यह कार्य रास्तों अथवा खुले मैदान में किया जाता है क्योंकि ताना भरने में लम्बे स्थान की आवश्यकता होती है। इसके बाद ताना जुड़ाई, नाका बांधना, डिजाईन बांधना आदि कार्य पूर्ण किए जाते हैं।

ठीक इसी प्रकार बाना में उपयोग किए जाने वाले धागा कतान आदि रंगाई उपरांत बाबीन भरना नामक प्रक्रिया से गुजरते हैं। इस क्रिया में निवास पर ही अधिकतर महिलाएं छोटा चरखानुमा उपकरण चला कर पूर्ण करते हैं जिसे विमल भरना कहा जाता है एवं उपयोग में लाए जा रहे उपकरण को चरखा पलीता कहा जाता है।

उक्त क्रियाएं सम्पन्न उपरांत धागा हाथकरघा ताना-बाना में अपनी जगह सुनिश्चित करता है। अब बारी है बुनकर द्वारा साड़ी निर्माण (बुनाई) करना, साड़ी बुनाई के साथ-साथ मांग अनुसार छोटी-बड़ी बूटी, बार्डर, डिजाइन तैयार किया जाता है। अंत में खूबसूरत पल्लू की बुनाई की जाती है सब मिलाकर परिणाम जो सामने आता है उसका नाम है **चन्देरी साड़ियां**।

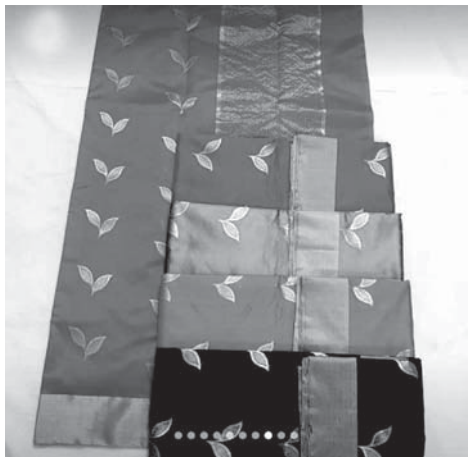

पेट की भूख शांत करने वाली यह सम्पूर्ण प्रक्रिया मजदूर-बुनकर के जीवन का अभिन्न अंग है। पूर्वकाल में एक हाथकरघा पर दो मजदूर चाहे वह पुरुष हों या महिला एक साथ बैठ कर कार्य करते थे। वर्तमान में अधिकतर एक मजदूर ही कार्य कर रहा है। चाहे वह फिर पुरुष हो अथवा महिला, कभी-कभी महिला-पुरूष को एक साथ एक ही हाथकरघा पर कार्य करते हुए देखा गया है।

विपरीत इसके एक समय ऐसा भी रहा है जब महिलाएं साड़ी बुनाई का कार्य प्रमुखता के साथ करती थीं और पुरुष घर के अन्य कार्य करता था। झांसी गजेटियर 1908में उल्लेखित एवं आज भी नगर में सुनने को मिलती चर्चित कहावत-

शहर चन्देरी मोमिनवारा
त्रियाराज, खसम पनहारा

इसका शाब्दिक अर्थ यह है कि चन्देरी बुनकरों का नगर है। जहां पत्नियों का शासन चलता है और पति कुंआ-बावड़ी से पानी भर कर लाता है। इसका अर्थ यह नहीं निकाला जा सकता कि पुरुष साड़ी बुनाई कार्य बिलकुल ही नहीं करते थे। सच्चाई यह है कि बुनकर परिवार के प्रत्येक सदस्य के योगदान का प्रतिफल है **चन्देरी साड़ियां**।

साड़ी उत्पादन मुख्यतया तीन क्षेत्र में किया जा रहा है।

प्रथम निजी क्षेत्र- इसमें बुनकर स्वयं निवेश कर स्वयं साड़ी तैयार कर कहीं भी विक्रय कर देता है लेकिन ऐसे बुनकरों की संख्या न्यून है।

द्वितीय मजदूरी क्षेत्र- इसमें बुनकर साड़ी व्यापारी अथवा मास्टर बुनकर से सभी कच्चा मटेरियल प्राप्त कर, साड़ी की डिजाइन अनुसार मजदूरी तय उपरांत साड़ी तैयार कर साड़ी व्यापारी, मास्टर बुनकर के यहां जमा कर देता है और तयशुदा मजदूरी प्राप्त कर लेता है। नगर के अधिकांश बुनकर इस श्रेणी में आते हैं।

तृतीय सहकारी क्षेत्र- जिसमें मजदूर-बुनकर, सहकारी समिति के माध्यम से इस कुटीर उद्योग से जुड़े हुए हैं। नगर में एक दर्जन से अधिक बुनकर सहकारी समिति कार्यरत हैं।

ठीक इसी प्रकार विक्रय क्षेत्र में **प्रथम शासकीय क्षेत्र**- जिसमें म.प्र. शासन के उपक्रम देश भर में फैले शासकीय मृगनयनी नामक शोरूम के माध्यम से विक्रय करते हैं। **द्वितीय निजी क्षेत्र**- बुनकर एवं साड़ी व्यापारी, मास्टर बुनकर अपनी योग्यतानुसार साड़ी विक्रय करते हैं। **तृतीय सहकारी क्षेत्र** में समितियां हाट-बाजार, शासन द्वारा आयोजित मेला-प्रदर्शनी इत्यादि के माध्यम से विक्रय करते हैं।

भारत सरकार द्वारा विदेशों में आयोजित प्रदर्शनियों में विशेष रूप से जर्मनी, इटली, ब्रिटेन, पेरिस में चन्देरी वस्त्रों ने प्रभावशाली छाप छोड़ कर निर्यात हेतु नए द्वार खोल दिए हैं। फलस्वरूप 1999 ईस्वी में इटली के लिए हाथकरघा निर्मित वस्त्र जिसमें करटेन, कवर, कुशन कवर, ड्रेस मटेरियल, पर्दा आदि का निर्यात किया गया।

साड़ी निर्माण क्षेत्र में प्रमुख रूप से मुस्लिम, कोली समुदाय के अलावा अन्य वर्ग की भी महती भूमिका सम्मिलित है। यानि सभी समाज की सहभागीदारी नगर के सदभाव, भाईचारा आपसी मेल-मिलाप का माध्यम बन कर **सर्वजन हिताय-सर्वजन सुखाय** एवं जीयो और जीने दो में अटूट विश्वास करने की प्रेरणा प्रदान करते हुए चन्देरी साड़ियां हिन्दुस्तान के मशहूर शायर इकबाल की निम्नलिखित पंक्तियां दोहराने को विवश कर देने का जरिया है।

मजहब नहीं सिखाता, आपस में बैर रखना।
हिन्दी है हम, वतन हिन्दोस्तां हमारा।।

चन्देरी साड़ियां सदियों से अपनी पारदर्शितायुक्त बारीक बुनाई तथा साड़ियों पर बनाई जा रही बूटी के लिए प्रसिद्ध है। नजाकत-महीनता साड़ी का महत्वपूर्ण घटक होकर अपने आप में अनोखा लक्षण है। साड़ियों पर बूटी कारीगर के हाथ एवं करघा के मिश्रित मेहनत का फल है। हाथ से बनी हुई बूटी स्थाई रहती है बूटी का मूल आकार साड़ी के उपयोग किए जाने उपरांत वैसा का वैसा रहता है।

चन्देरी साड़ी की यह विशेषता ही कही जावेगी कि साड़ी के बार्डर में जो डिजाइन बनया जाता है वही डिजाइन साड़ी के पल्लू में बनाया जाता है। साड़ी में हल्के-गहरे रंग कलात्मक चौड़ी बार्डर सूती-

रेशमी छोटे-बड़े बेलबूटे बनाए जाते हैं। चन्देरी साड़ी अन्य साड़ियों के मुकाबले हल्की होती है। चन्देरी साड़ी पर मोर, बतख, विभिन्न झाड़, फूल-पत्ती आदि की आकृतियां साड़ी को और भी सुन्दर बनाती है।

बुनाई कार्य में दक्ष बुनकर को यह महारथ हासिल है कि वह किसी भी प्रकार की डिजाइन साड़ी पर बुनाई के माध्यम से प्रदर्शित करते हैं। चन्देरी पत्थरों का ऐतिहासिक नगर होने के कारण मध्यकालीन स्मारकों पर बेहद खूबसूरत पेचीदा डिजाइनें, नक्काशी उत्कीर्ण है, जिसे बुनकर साड़ी पर बुनाई के माध्यम से उजागर करते रहते हैं।

लगभग 35 हजार आबादी वाला यह मझौला कस्बा में आधी से अधिक आबादी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से इस कुटीर उद्योग से जुड़ी हुई है। लगभग छः हजार हाथकरघा बुनकरों के निवास स्थलों पर स्थापित होकर रास्तों से गुजरने वाले राहगीर-पर्यटकों को खट-खट की आवाज सुना कर आकर्षित कर रहे हैं। यही पूर्व क्षेत्रीय सांसद श्री ज्योतिरादित्य सिंधिया के प्रयासों से स्थापित **हेण्डलूम पार्क** में 240 बुनकर-मजदूर एक छत के नीचे खुली स्वच्छ-स्वस्थ हवा में साड़ी निर्माण कर आ रहे पर्यटकों की जिज्ञासाओं का समाधान कर रहे हैं।

वर्तमान समय में चन्देरी के दस्तकारों द्वारा हर वर्ग को लुभाने वाली साड़ी एवं सूट का निर्माण किया जा रहा है जिनमें एक नहीं कई पुरानी डिजाइनें भी शामिल हैं। कुछ डिजाइनें ऐसी हैं जिनका उपयोग विशेष अवसर या शादी-विवाह आदि के मौके पर किया जाता है जैसे- **नक्शी टिसू, जैकार्ड बार्डर, मेंहदी लगे हाथ, नाल फेरमा, अडडा बार्डर, पटेला** आदि।

साड़ी के अलावा चन्देरी सूट को भी खूब पसंद किया जा रहा है। उत्पादन अंतर्गत विभिन्न डिजाइनें प्रचलन में है। सादा कपड़ा के अलावा, कुर्ता, शर्ट, रूमाल, पर्दा, कुशन कवर, दुपट्टा आदि का उत्पादन निरंतर जारी है। ओढ़नी, साफा और पगड़ी भी उपलब्ध है। याद रखना होगा पूर्वकाल में चन्देरी निर्मित साफा और पगड़ी, साड़ी की तरह प्रसिद्ध हुआ करती थी। सिंधिया राजघराना के अलावा देश के विभिन्न राजवंशों विशेषकर होल्कर, कोल्हापुर, बड़ौदा में चन्देरी पगड़ी बांधने का प्रचलन आम था। बड़ौदा के महाराजा गायकवाड़ को चन्देरी पगड़ी बेहद पसंद होने के कारण वह हमेशा चन्देरी पगड़ी बांधते थे।

2004 में भारत सरकार द्वारा विधिवत जी.आई. टैग प्राप्त कर, नगर की जीवन रेखा कही जाने वाली चन्देरी साड़ियां एवं उन्हें निर्मित करने वाले बुनकरों ने अपने कला-कौशल के दम पर एक बार नहीं कई बार चन्देरी का नाम रोशन करते हुए उपलब्धियां हासिल की है। यहां के बुनकर भारत सरकार द्वारा हस्त शिल्पकला क्षेत्र में स्थापित **राष्ट्रीय सम्मान महामहिम राष्ट्रपति** के कर कमलों के साथ ही **राज्य स्तरीय सम्मान मुख्यमंत्री** के कर कमलों द्वारा प्राप्त कर अपने हुनर का जलवा बिखेर रहे हैं।

26जनवरी 1992 दिल्ली राजपथ पर म.प्र. शासन झांकी के माध्यम से चन्देरी साड़ी निर्माण (बुनाई) का प्रत्यक्ष प्रदर्शन बुनकरों की सफल कहानी है। यही नहीं अनेक बुनकर (पुरुष-महिला) **शारजहां, इग्लैंड, दुबई, नेपाल, पाकिस्तान, जर्मनी आदि देशों की विदेश यात्राएं** कर चुके हैं। 2010 में दिल्ली में आयोजित कामनवैल्थ खेलों में विजेता खिलाड़ियों के गले में डाला जाने वाला स्कार्फ चन्देरी हाथकरघा की देन रही है।

यूं तो चन्देरी साड़ी के चाहने वाले देश के प्रत्येक कोने में मौजूद हैं, वहीं दूसरी ओर वालीवुड का चन्देरी साड़ी प्रेम किसी से छुपा नहीं है। फिल्मी दुनिया की नामी-गिरामी अभिनेता-अभिनेत्रियां, पार्श्व गायक चन्देरी साड़ी की जबरदस्त प्रशंसक ही नहीं चन्देरी साड़ी का उपयोग कर आत्म संतुष्टि, सुखद अनुभव का एहसास भोग रहे हैं। भजन गायक अनूप जलोटा एवं सूफी गायक कैलाश खेर का चन्देरी आगमन उपरांत चन्देरी वस्त्रों की दिल खोलकर प्रशंसा करना हमारी यादें हैं।

अभिनेत्री हेमा मालिनी, श्रीदेवी, विद्या बालन, मंदिरा बेदी आदि के अलावा 2009 में आमिर खान, करीना कपूर का चन्देरी आगमन, बुनकरों के साथ बैठकर उनके सुख-दुःख पूछना, साड़ी खरीदना, करीना कपूर द्वारा खरीदी गई साड़ी करीना साड़ी के नाम से भारत में प्रसिद्ध होकर मांग आज तक जारी रहना उल्लेखनीय है।

2018में फिल्म सुई धागा की शूटिंग हेतु अभिनेता वरुण धवन अभिनेत्री अनुष्का शर्मा का चन्देरी आगमन, एक माह शूटिंग करना, अनुष्का शर्मा द्वारा साड़ी खरीदना, तद्उपरांत अनुष्का साड़ी के नाम से चलन में आकर साड़ी की मांग बढ़ना चन्देरी साड़ी का कामयाब फलसफा है।

1 मई 2019 मजदूर दिवस के मौके पर महामहिम म.प्र. राज्यपाल श्रीमती आनंदीबेन पटेल का चन्देरी आगमन, बुनकरों के निवास पर जाकर चन्देरी साड़ियों की बारिकियां समझना, साड़ी निर्माण को देखना चन्देरी साड़ी के लिए शुभ और सुखद अनुभूति है। यूनेस्को क्रिएटिव सिटी अंतर्गत चन्देरी टेक्सटाइल श्रेणी में चयन हेतु प्रतीक्षारत है।

आज पश्चिमी सभ्यता की हवाओं और भारतीय वस्त्र शिल्पकला को प्रभावित करने का भरपूर प्रयास किया जा रहा है। बावजूद इसके सब कुछ होते हुए भी भारतीय परिवेश में पारम्परिक सतरंगी धागों के माध्यम से चन्देरी साड़ियां अपने लोक संस्कृति, सांस्कृतिक विरासत को बखूबी सजेहे हुए है। दुनिया में आज सब कुछ बदला-बदला सा है। नहीं बदला तो वह है चन्देरी साड़ी, वस्त्र आदि का निर्माण प्रक्रिया। निःसन्देह हाथकरघा वस्त्र कुटीर, हस्त शिल्पकला अपने आप में गौरवमय अतीत का आईना ही नहीं जिंदा चलती-फिरती विरासत-इतिहास है।

-चन्देरी जिला अशोक नगर (म.प्र.)
मोबा. 09425723937

शोध पत्र

ग्वालियर घराने की अप्रतिम गायिका

विदुषी डॉ. वीणा सहस्रबुद्धे

शोधार्थी मोनिका सिंह

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की परिपाटी अत्यंत प्राचीन हैं, इसमें अनेकों प्रकार की गायन शैलियाँ पुष्पित- पल्लवित होती रही हैं। मुगल काल के दौरान भारतीय शास्त्रीय संगीत में नव परिवर्तनशीलताओं के फलस्वरूप हमारे संगीत में कुछ और विशेषतायें जुड़ गयीं जैसे ख्याल गायन शैली और घराना परंपरा।

हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में विभिन्न घराने व गायन शैलियाँ प्रचलित हैं जिनमें से ग्वालियर घराने का इतिहास अत्यंत प्राचीन व गौरवशाली रहा है। इस घराने की गायनशैली विशिष्ट व प्रभावपूर्ण है, साथ ही इस घराने में एक से एक मूर्धन्य कलाकार रहे हैं जिन्होंने इस घराने को सर्वश्रेष्ठ व समृद्धशाली बनाए रखने में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

ख्याल गायन के क्षेत्र में यदि महिला कलाकारों की बात करें तो ग्वालियर घराने की अप्रतिम गायिका डॉ. वीणा सहस्रबुद्धे का नाम अविस्मरणीय है। अपने अद्वितीय गायन से रसिक श्रोताओं के हृदय पर भावपूर्ण स्मृतियाँ सँजोने वाली डॉ. वीणा सहस्रबुद्धे जी का जन्म 14 सितम्बर 1948 को कानपुर के सांगीतिक एवं आध्यात्मिक मराठी ब्राह्मण कुल में हुआ। आपका सौभाग्य ही आपको इस परिवार में ले आया था आपके पिता स्वर्गीय **श्री शंकर श्रीपाद बोडस जी** स्वयं ग्वालियर घराने के सिरमौर स्वर्गीय **पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर** जी के परम शिष्यों में से एक थे जिस कारण घर पर बड़े-बड़े गुणीजनों एवं संगीत साधकों का तांता लगा रहता था आपके ज्येष्ठ भ्राता स्वर्गीय **पंडित काशीनाथ शंकर बोडस** भी अपना सम्पूर्ण जीवन शास्त्रीय संगीत के नाम कर चुके थे।

वीणा जी ने संगीत की शिक्षा अपने पिता एवं भाई साहब के अतिरिक्त पद्मश्री स्वर्गीय **पंडित बलवंत राय भट्ट जी**, स्वर्गीय **वसंत राव ठकार जी** एवं स्वर्गीय **पंडित गजानन बुवा जोशी जी** से भी प्राप्त की। आपको कत्थक नृत्य, तबला, सितार का भी पर्याप्त ज्ञान था। साथ ही आपको हिन्दी मराठी व अंग्रेजी भाषाओं का भली-भांति ज्ञान था। आपने स्नातक की डिग्री सन् 1968में कानपुर विश्वविद्यालय से प्राप्त की। सन् 1969 में अखिल भारतीय गान्धर्व महाविद्यालय मण्डल, मुम्बई से संगीत गायन में अलंकार की उपाधि प्राप्त की। सन् 1979 में कानपुर विश्वविद्यालय से ही संस्कृत विषय में परास्नातक की उपाधि प्राप्त की सन् 1968में ही मात्र 20 वर्ष की आयु में आपका विवाह कानपुर आई.आई.टी. में कम्प्यूटर साइंस प्रोफेसर पद पर कार्यरत **डॉ. हरी वासुदेव सहस्रबुद्धे जी** के साथ सम्पन्न हुआ। सन् 1969 में आपने एक पुत्र रत्न **लक्ष्मण हरि सहस्रबुद्धे** तथा 1972 में पुत्री **दुर्गा सहस्रबुद्धे** को जन्म दिया। इस दौरान भी एक माँ के सम्पूर्ण दायित्वों का निर्वाहन करते हुए आप संगीत साधना में निरन्तर संलिप्त रहीं। सन् 1988में अ.भा.गा.म.मं.मु. द्वारा डाक्टरेट की उपाधि दी गई जिसे मंडल द्वारा संगीत प्रवीण उपाधि भी कहा जाता है। सन् 1976में आपने अपने पिता के नाम से शंकर संगीत महाविद्यालय प्रारम्भ किया।

विवाहोपरान्त आपने कानपुर आई.आई.टी. में सन् 2009 में 6सप्ताह के लिए शिक्षण कार्य किया। बाल्यकाल से ही आपकी रुचि संगीत सीखने के साथ सिखाने में भी रही। पिता जी की ही भांति आप शिक्षण को रुचिपूर्ण बनाने हेतु विविध भूमिकाएं, कहानियों आदि के माध्यम से राग व स्वरों का लगाव, ताल रचना तथा लय प्राबल्य विधान आदि को समझाते हुए शिक्षण कार्य सम्पन्न करती थी। आपकी गायिकी व शिक्षक प्रवृत्ति को एक नवीन आयाम मिला, जब सन् 1984 में पूना आकर बस गई। पूना के प्रसिद्ध एस.एन.डी.टी. कालेज में आप उच्च संगीत शिक्षक पद पर आसीन हुई तथा सन् 1985-90 वर्षों तक आपने सैकड़ों की संख्या में

शिक्षार्थी तैयार किए जो आज आपका व ग्वालियर घराने के शास्त्रीय संगीत का परचम देश-विदेश में लहरा रहे हैं। आपकी शिष्याएं आपको ताई कहकर पुकारती थीं। आपकी प्रमुख शिष्याओं में श्रीमती अंजली मालकर, श्रीमती अपर्णा गुरव, श्रीमती जयंती सहस्रबुद्धे, श्रीमती रचना बोडस, डॉ. रजनी रामचन्द्रन, डॉ. श्यामला जोशी, सुश्री सुरश्री जोशी, डॉ. सुषमा बाजपेई जी, वैशाली देसाई जी आदि हैं जो वर्तमान समय में भारतीय शास्त्रीय संगीत की शाखाओं को हरा भरा बनाए हुए हैं। सन् 2002-04 तक की आपने आई.आई.टी. मुम्बई (संगीत विभाग) को भी अपनी गरिमामयी उपस्थिति से सुशोभित किया।

आपका पहला बड़ा कार्यक्रम सवाई गंधर्व (पुणे) हुआ जो अत्यन्त सफल रहा, तदोपरान्त सन् 1984 से आपको संगीत प्रेमी जानने पहचानने लगे, चर्चा के साथ ही आपके कंधों पर स्वयं को स्थापित कलाकार बनाने व शास्त्रीय संगीत को नवीन दिशा देने का गंभीर कार्य भी आ चुका था।

इसके बाद आपने देश विदेश में बहुत से छोटे बड़े कार्यक्रमों में अपनी प्रस्तुति दे सराहना लूटी। आपके बड़े मंचों में Stockholm और Copenhagen के Voices of the World Festival में सहभागिता। भारत की स्वतंत्रता के पचासवें जन्मदिवस पर Asia Society, New York में भारत का प्रतिनिधित्व किया। बहुत सी कार्यशालाएं आपके द्वारा ली गई साथ ही आप वर्षों तक आल इण्डिया रेडियो की टॉप-ग्रेड कलाकार रहीं। आपके कुल 41 अलबम ख़्याल व भजनों के आ चुके हैं। जिसमें EMI, BMG, SONY MUSIC, PLUS MUSIC TODAY जैसी बड़ी कम्पनियों के लिए आपने अपनी आवाज दी।

आपके सभी भजनों को गुणीजनों के साथ-साथ जनमानस द्वारा भी बहुत सराहना मिली। जिनमें 'देव बड़े दाता बड़े' को विशिष्ट रूप से सराहा गया। तालों में आड़ा चारताल आपका पसंदीदा ताल रहा। यह ताल आपको बलवन्त राव भट्ट जी द्वारा भलीभांति अभ्यस्त करवाया गया था।

यदि गीत शैलियों की बात करें तो 'तराना' गीत प्रकार आपका ध्यान अधिक आकर्षित करता रहा होगा, ऐसा प्रतीत होता है चूंकि आपके द्वारा मराठी भाषा में तराना विषयी काही सांगीतिक विचार (सांगीतिक विश्लेषण) विषय पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया।

आपकी रुचि लेखन कार्य में भी रही, जिसके चलते मण्डल की त्रैमासिक पत्रिका 'संगीत कला विहार' में निरन्तर आपके लेख प्रकाशित होते रहे। सन् 2000 में मण्डल द्वारा प्रकाशित एक संस्मरण 'उत्तराधिकार' आपके द्वारा लिखी गई जिसमें आपने अपने पिताश्री, भाई साहब, गुरुओं के संस्मरण तथा अंत में संगीत में नवनिर्मित के विषय पर विचार व्यक्त किए हैं। इसी सन् में एक अन्य पुस्तक 'नाद-निनाद-मेरे परिवार की मौलिक रचनायें' का भी प्रकाशन हुआ जिसमें आपके परिवार की मौलिक रचनाओं को लिपिबद्ध कर प्रकाशित किया गया था इस पुस्तिका में आपकी भी 21 रागों में स्वरचित बंदिशों की रचनाएं मिलती हैं। रचनाकार व गायिका के रूप में आप बहुत ही गंभीर, चिन्तनप्रिय तथा अनुशासित रही। यह गुण आपके व्यक्तित्व को और अधिक प्रभावी बनाते हैं।

आपके उत्कृष्ट गायन हेतु आपको सन् 1993 में उ.प्र. संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार तथा सन् 2013 का संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार राष्ट्रपति जी के कर कमलों द्वारा प्रदान किया गया। उस समय आप 'progressive supranuclear palsy' (PSP) नाम की गंभीर बीमारी से जूझ रही थी। आपका अंतिम कार्यक्रम 02 दिसंबर 2012 को LOS ALTOS HILLS के फुट हिल कालेज में हुआ, जो एक चैरिटी शो रहा। Progressive supranclear palsy जैसी प्राणाघतक बीमारी के चलते आपने 29 जून, 2016को इस चराचर जगत से विदा ली, जिसके साथ ही भारतीय शास्त्रीय संगीत ने एक अमूल्य निधि खो दी थी। हाल ही में मई 2019 को अ.भा.गा.म.मं. मुम्बई द्वारा आपको 'महामहोपाध्याय' की उपाधि से भी सम्मानित किया गया। आपके सद्व्यवहार उत्तम, उदार व उत्कृष्ट व्यक्तित्व तथा संगीत उद्धार के लिए किए गए कार्यों हेतु जगत सदैव आपका ऋणी रहेगा तथा संगीत प्रेमियों के हृदय तथा मस्तिष्क पटल पर आप और आपका संगीत सदैव द्वैदीप्यमान रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. उत्तराधिकार, सहस्रबुद्धे वीणा, 2000, अ.भा.गां. महाविद्यालय मण्डल, मुम्बई।
2. नाद निनाद- मेरे परिवार की कुछ मौलिक रचनाएं, सहस्रबुद्धे वीणा, 2000, अ.भा.गां. महाविद्यालय मण्डल, मुम्बई।
3. डॉ. हरि वासुदेव सहस्रबुद्धे एवं डॉ. सुषमा बाजपेई जी द्वारा साक्षात्कार से प्राप्त ज्ञान के आधार पर।
4. संगीत कला विहार पत्रिका
5. jttp://www.cse.iitb.ac.in>vhs_academic
6. https://www.cse.iitb.ac.in/-hvs_academic.html

- 28/149, कमला टॉवर, कानपुर (उ.प्र.) 208001
मो. 9598175349

शोध पत्र

प्रो. डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' की कृतियों का
महिला सशक्तिकरण में योगदान

शोधार्थी प्रियंका शर्मा

डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' की कृति 'सारस्वत-सौरभम्' 'किं चतुष्कम्' खण्ड चार मुक्तक कविताओं में डॉ. पाण्डेय ने समसामयिक बिन्दुओं का स्पर्श किया है। शनैः शनैः कवि हृदय ने जैसे-जैसे समाज को निकट से देखा वैसे ही उसे समाज की अनेक विकृतियाँ झकझोरने लगी। समाज में बढ़ती हुई विसंगतियों के उठाते हुए समाज में स्त्री की दुर्दशा को देखकर कवि हृदय व्यथित होकर व्यंग्यात्मक शैली में समाज से अनेक प्रश्न करता है।

विवाह मानव जीवन को ईश्वर प्रदत्त अनमोल देन है। किन्तु वर्तमान समाज में लोगों में निरन्तर बढ़ रही अर्थलोलुपता तथा विलासी प्रवृत्ति ने इस पावन व धार्मिक परम्परा को भी कलुषित कर दिया है। इस कुप्रथा के कारण कभी जो नारी देवता तुल्य पूजनीय मानी जाती थी, आज के धन के लोभ में आकर अनेक अपशब्द, संज्ञाओं से अभिहित कर प्रताड़ित की जा रही है। 'यौतुक-प्रथा' कौढ़ की तरह समाज में फैलती जा रही है। जिसके भयंकर दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं। कवि प्रश्नानुप्रश्न की शैली में 'दहेज' जैसी विकट समस्या पर व्यंग्यात्मक शैली में प्रश्न उठाते हुए कहता है-

'किं नामधेयं यौतकम्
किं नित्योपयोगि वस्तु
गेहे तव पूर्वमस्तु।
नास्ति चेत् कुरु प्रयत्नं
पौरुषं किं ते सपत्नम्।।'[1]

नर-नारी एक पूर्ण के दो अंश है अतः जब तक दोनों का समन्वय, संयोग नहीं होता तब तक सृष्टि का विस्तार असम्भव है। इनमें भी नर की पूरयित्री नारी है जिसे जाया की संज्ञा दी गई है-

यावन्न विन्दते जायां तावदर्धो भवेत् पुमान।[2]

पुरुष आधा है और उस पुरुष का परार्ध है जाया, जिसे शतपथ ब्राह्मण का वचन सिद्ध करता है-

अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जायेति।[3]

'आत्मा वै जायते पुत्रः' कहा गया है। पुरुष के इस प्रकार पुनः उत्पन्न होने पर ही जाया का जायात्व सिद्ध होता है ऐतरेय ब्राह्मण में जाया शब्द को इस प्रकार व्युत्पन्न किया गया है-

तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः।[4]

महर्षि मनु ने इस जाया शब्द की व्युत्पत्ति को और भी अधिक स्पष्ट किया है कि पति भार्या में पुत्ररूप में उत्पन्न हो तभी जाया जाया कहलाती है।

पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते।
जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः।।[5]

यौतुक प्रथा पर प्रश्न उठाने वाली 'परकीयधनम्' मुक्तक कविता में कवि ने यौतुक की तुलना राक्षस से की है-

'यौतुकयातुधानैर्विहितदुर्दशं तद्धनं'।[3]

कवि वर्तमान परिवेश में व्याप्त 'यौतुकप्रथा' के कारण नारी दुर्दशा पर चिन्ता व्यक्त करते हुए 'परकीय धनम्' कविता के माध्यम से समाज को यह सन्देश प्रदान कर जागरूकता उत्पन्न करना चाहते हैं कि किसी भी सामाजिक को अपनी पुत्री को परकीय धन के रूप में प्रदान करने से पहले दहेज रूपी राक्षस पर भलीभांति विचार कर लेना चाहिए तथा अत्यन्त सोचविचार पूर्वक ही कन्या रूपी धन को परकीय धन के रूप में प्रदान करना चाहिए।

'तत्पुनः
गृहस्थः/सामाजिक प्राणी
परकीयं किन्तु ममत्वेन नैजं
यौतुकयातुधानै र्विहित दुर्दशं तद्धनं
विलोक्य तादृशं दुःखमनुभवति
यस्यानुमानं तु ज्ञानी कण्वोऽपि कर्तु न पारयतिस्म
परन्तु सावधान मनसो भवन्तु ते
ममत्वप्रदातृ परकीयं धनम्।

समाज में बढ़ती हुई विसगतियायें को उठाते हुए समाज में स्त्री की दुर्दशा को देखकर कवि हृदय पुकारता है कि 'कोऽयं तस्य अपराध:'। हमारे समाज में यदि आज भी किसी नववधू के गर्भ से निरन्तर ही कन्या सन्तति उत्पन्न होती है तो उसका घर एवं समाज में तिरस्कार होता है। यहाँ तक कि उसे अनगिनत यातनाएँ दी जाती है। अत: कवि समाज के इस अपराध से दु:खित होते हुए समाज से प्रश्न करता है कि इसमें उसका क्या अपराध है–

'पुत्रं यदि सा न सूते
बालिकाततिञ्च तनूते
भग्याधीना किं कुरुते
तदपि सापराधां मनुषे।।
तदा व्यर्थं तवाक्षेप: मार्गो नियतेरबाधा
कोऽयं तस्या अपराध: ?

स्त्री–पुरुष के भेद के कारण वर्तमान में मनुष्य शिक्षित होते हुए भी अपने आपको कन्या–भ्रूण हत्या रूपी पाप के दलदल में धकेलता जा रहा है। इस तरह के कुकृत्य ने सम्पूर्ण मानव जाति को कलंकित कर दिया है। ऐसा कलंक जो मानव के दुष्कृत्यों तथा अन्याय की पराकाष्ठा का सूचक है। कन्या–भ्रूण हत्या के लिए भी 'दहेज प्रथा' जैसी सामान्य बुराई को उत्तरदायी माना जा सकता है। क्योंकि गरीब माता–पिता दहेज देने के भय से कन्या के जन्म को अपशकुन समझने लगते हैं और उन्हें जन्म से पूर्व ही कोख में समाप्त कर दिया जाता है।

जाया शब्द के माध्यम से नारी की महिमा वेदों में यत्र तत्र देखने को मिलती है–

जायेदस्तं मघवन् त्सेदुयोनि:।
कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते।।[6]

जहाँ पहले सामाजिक जीवन में नारी के विषय में कहा जाता था कि 'नाना नार्या निष्फला लोकयात्रा' अर्थात् नारी के बिना लोक यात्रा निष्फल है उसी आदर्श की मूर्ति नारी का वर्तमान समाज में जो अपमान हो रहा है। वह निश्चय ही निन्दनीय है। जीवन संघर्षों में परिपातित व आपदाओं की अग्नि में तापित नारी जीवन की कहानी मैथलीशरणगुप्त जी के शब्दों में यूँ व्यक्त करते हैं–

'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी
आँचल में है दूध और आँखों में है पानी।।'

प्रसाद जी ने नारी की सुन्दर अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है–

'यह आज समझ तो पायी हूँ,
मैं दुर्बलता की नारी हूँ।
अवयव की सुन्दर कोमलता,
लेकर मैं सबसे हारी हूँ।

नारी स्वभाव से सहनशील होती है। आरम्भ में वह ही प्रसव पीड़ा को सहन करती है अन्त में भी अपने ऊपर अत्याचारों को सहन करती है। इसी भाव से व्यथित डॉ. पाण्डेय ने कहा है कि ग्राम से नगर तक नारी के प्रति जो सम्मान और आदर्श होना चाहिए वह उसे सुलभ

नहीं है। पुत्र देने वाली नारी का सम्मान है और कन्या सन्तति वाली का अपमान है। यह विसंगति समाज के लिए कौढ़ है। सभ्य समाज भी इस कदाचरण से अछूता नहीं है। अत: कवि ने एक ओर जहाँ समाज में नारी की अवमानना का चित्रण किया है तो दूसरी ओर कन्या सन्तति भी पुत्र के समान ही कल्याणकारी है यह कहकर पुत्र व पुत्री दोनों को समान समझने का संदेश प्रदान कर समाज में जागरूकता लाने का प्रयास किया है यथा–

'अग्रिमा नास्ति किमघ नारी
नर एव किं कल्याणकारी
बालिकाऽपि धत्ते पुत्रं साम्यं
मोदस्व तवेदं महद्भाग्यम्।।[7]

स्त्री–पुरुष को समान समझने का सन्देश प्रदान कर अंत में कवि ने राष्ट्रहित में 'परिवार कल्याण' सीमित परिवार को अपनाने का सन्देश प्रदान करते हुए कहा है कि–

'तत्स्वीकुरु निरोधम्, क्व वा रोध: विधेरव्धिरगाध:
कोऽयं तस्या अपराध: ?'

प्राचीनकाल में निरपराध होते हुए भी अबला नारी पर जो अत्याचार किए जाते थे वे आज भी शिक्षित समाज में उसी रूप में बने हुए हैं अत: समाज की इस अवस्था से दु:खित होकर डॉ. पाण्डेय नारी दशा के उत्थान के लिए समाज को जागरूक बनाना चाहते हैं। समाज में नारी की महत्ता को गौरवान्वित कर समाज में नारी उत्थान के प्रति चेतना जागृत करते हुए समाज में स्त्री के प्रति पूजनीय भाव होना चाहिए।

संदर्भ सूची–

1. सारस्वत–सौरभम्, पृ.सं.–35
2. व्यास–संहिता, पृ.सं.–2/14
3. शतपथ ब्राह्मण, 5/2/3/10
4. ऐतरेय ब्राह्मण 7/13
5. मनु स्मृति, 9/8
6. ऋग्वेद, 3/53/4/6
7. सारस्वत–सौरभम्, पृ.सं.–36

– वार्ड नं. 19, मंगरोल, जिला–बारन–325215, मो. 9982491567

■

पुस्तक समीक्षा

गहन मानवीय संवेदनाओं का दस्तावेज

''दरख़्त पर चिड़िया'' लेखक- राधेलाल बिजधावने

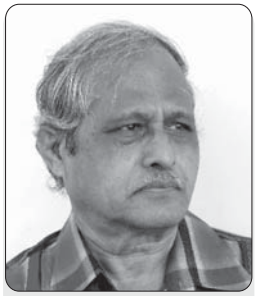

राजेन्द्र नागदेव

वरिष्ठ कवि राधेलाल बिजधावने का काव्य-संग्रह ''दरख़्त पर चिडिया'' गहन मानवीय संवेदनाओं का दस्तावेज है। इसमें संवेदनशील कवि मन की पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय चिंताएँ गहरे चिंतन-मनन के साथ व्यक्त हुई हैं। अधिकांश कविताएँ घर-परिवार, चौके-चूल्हे से जन्म लेती हैं और सहजता से महत्वपूर्ण सामाजिक नैतिक सरोकारों और विमर्षों तक का सफ़र तय करती हैं। कवि इन कविताओं में अक्सर इतनी दार्शनिक गहराई में चला जाता है कि कविता के मर्म को समझने के लिए उसका पुनः पुनः पारायण आवश्यक हो जाता है। ये उपसंहार विहीन खुले हुए अंत की कविताएँ हैं। ये जैसे असमाप्त कविताएँ हैं या कवि ने इन्हें आगे के लिए पाठक पर ही छोड़ दिया है। 'दरख़्त पर चिड़िया' की कविताओं में कवि का ईमानदारी पूर्ण आत्मचिंतन उपस्थित है। कवि अपनी कमजोरियों को स्वीकारता है। वह वर्तमान परिस्थितियों में जन की असहायता स्वयं की असहायता के माध्यम से व्यक्त करता है। उसकी वैयक्तिकता सामाजिकता में रूपांतरित होती है। 'पीछा करता डर' कविता की ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं- ''मैं डरता हूँ/ अपने ही दकियानूसी सोच विचारों/ परंपराओं अर्थहीन राजनीति अर्थनीति/ साहित्य संस्कृति के खतरों से/ जो लगातार मेरे लिए नरक कुण्ड बनाते हैं'' (पृष्ठ 108)

कविताएं वर्तमान राजनैतिक स्थितियों पर टिप्पणी करती हैं। 'ऐलान' शीर्षक कविता की इन पंक्तियों में राजनतिक दलों द्वारा दिये जाने वाले झूठे आश्वासनों पर कटाक्ष है- ''शायद उन्हें ऐलान करने की बीमारी थी/ इसी जनतांत्रिक व्यवस्था की बीमारी से वे त्रस्त थे/ और इसी बीमारी से मारे गए'' (69)। कवि इन पंक्तियों में तथाकथित विकास पर टिप्पण करता है- ''जब भी मैं विकास के रास्ते चलता हूँ / मुझे लगता है / आधुनिक सभ्यता संस्कृति की मौत देख रहा हूँ/ ग्लोबल दुनिया/ अपनी ही आस्था विश्वसों/ मान्यताओं की मौत''।

संग्रह की कविताओं में नारी जीवन बार-बार आता है। उसमें गहन काव्यात्मकता है, कहीं सपाटबयानी का आभास नहीं होता। 'शहर में लड़की', 'वह लड़की', 'लड़की के हँसने पर', 'पीले चेहरे वाली लड़की', 'गर्भस्थ स्त्रियाँ', 'स्त्रियाँ', 'कफ़न ढकी लड़की' आदि नारी जीवन संबंधी कविताएं हैं। विश्व के लगभग हर देश में स्त्रियों के हिस्से में दोयम दर्जे का ही व्यवहार आया है। हमारे देश में स्थिति कुछ अधिक ही सोचनीय है। इस स्थिति का इन कविताओं में आना सहज सृजनात्मक प्रक्रिया है। कविताओं में स्त्रियों के प्रति करुणा भाव व्यक्त हुआ है। किंतु इन स्त्रियों में अपनी नियति के प्रति विद्रोह का स्वर नहीं है। 'पीले चेहरे वाली लड़की' की इन पंक्तियों में भवाभिव्यक्ति का अलग ही रंग है- ''पीले चेहरे वाली वह लड़की/ धीरे धीरे चिंताओं की आग से सुलग कर/ राख की ढेरी में बदल गई/ जीवन के रसोईघर में/ इच्छाओं आकांक्षाओं के/ उबले आलू दाल बाऊलों/ और जले हुए पराठों में'' (पृ. 94)। 'सुनीता' एक ध्यान आकर्षित करने वाली कविता है। इस एक ही कविता में कवि ने नारी जीवन के लगभग सभी आयामों को समाहित कर लिया है। इन कविताओं का फ़लक विस्तृत है। वह घर-परिवार से देश और विश्व तक जाता है। अक्सर पारिवारिक स्थितियों का रूपांतरण अधिक विस्तृत क्षेत्र में होता है। कवि हृदय में नैतिकता और आदर्शों का उच्च स्थान है। यह सत्य लगभग सभी कविताओं में दृष्टव्य है। कवि को देश के सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक अधःपतन की चिंता है। 'साइकिल' कविता में वह कहता है- ''मैं पूरे देश की साइकिल को पंचर साइकिल मानता हूँ / जिसके ब्रेक, सीट, पहिये, हब और फ्रीविल टूट गए हैं/ पैडल काम नहीं करते/ पूरी की पूरी साइकिल/ दुनिया के सबसे बड़े कबाड़खाने में पड़ी है/ जिसे कबाड़ी भी खरीदना नहीं चाहता'' (पृ. 88)। बिजधावने का काव्य संसार सागर की गहराई लिये हुए है। वहाँ अतिशय संवेदनशील मन की मानवीयता से सम्पृक्त अभिव्यक्तियाँ हैं। आज के समाज के कटु सत्य का बेबाक संवेदनापूर्ण चित्रण हैं ये पंक्तियाँ- ''वह लड़की चरित्रहीन नहीं थी/ पर चरित्रहीन लोगों ने उसे जबरन चरित्रहीन बना दिया था/ वह चरित्रहीन लड़की गूँगी बहरी थी/ आतताइयों व्यभिचारियों ने उसकी भाषा/ और आवाज छीन ली थी'' ('वह लड़की' पृ. 83) संग्रह की कविताओं में अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता है। ये पंक्तियाँ देखें- ''जवान लड़की की हँसी/ निश्छल प्रेम, ईमान और स्वतंत्र इच्छाओं/ और अस्तित्व की हँसी है/ पर वह बेईमान व्यभिचारियों की/ दुराग्रही हरकतों की उम्मीदों का रास्ता खोलती है'' (पृ. 71)

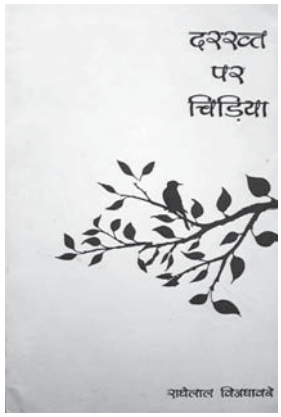

समग्रता में बिजधावने की कविता विषाद की कविता है। यह व्यक्तिगत नहीं वरन समाज का विषाद है जो कवि की भावनात्मकता में स्वाभाविक रूप से गुँथा हुआ प्रतीत होता है। कुल मिलाकर यह एक वरिष्ठ कवि का पठनीय-संग्रहणीय काव्य-संग्रह है।

लेखक- राधेलाल बिजधावने, प्रकाशक- प्रेरणा पब्लिकेशन, 26-बी, देशबंधु भवन प्रथम तल, प्रेस काम्पलेक्स, एम पी नगर, जोन-1, भोपाल-462011, पृष्ठ- 180, मूल्य- रु. 190/-

-डी के 2-166/18, दानिशकुंज भोपाल-462042, मो. 8989569036

■

पुस्तक समीक्षा

एक अच्छी किताब - भारतीय प्रतीकों का लोक

वसन्त निरगुणे

मुझे अभी एक अच्छी किताब पढ़ने को मिली। डॉ. श्याम सुन्दर दुबे कृत 'भारतीय प्रतीकों का लोक'। पहली चीज तो यह है कि प्रतीक और मिथक जैसे विषय पर कोई उसके अर्थ को जाने बगैर अपनी कलम नहीं चला सकता। और यदि कलम चलाता भी है तो उसे प्रतिपादित किस प्रकार वह करता है? प्रतीक और मिथक की दुनिया बहुत रहस्यमयी है। आदिम मनुष्य ने इनकी रचना प्रकृति के रहस्यों को जानने-समझने के लिये की है। इस बात को स्वयं लेखक पुस्तक की भूमिका में स्वीकार करते हैं। दुबेजी लिखते हैं- 'इन प्रतीकों में आदिम मस्तिष्क की झलक के अनुरूप अनुकृतियों का समावेश रहता है। उनकी विभिन्न धारणाओं में यही मस्तिष्क सक्रिय रहता है।' मेरी दृष्टि में आदिम स्वैर कल्पनाएँ ही प्रतीक और मिथक को जन्म देती हैं। मनुष्य जब किसी बात अथवा रहस्य को कहने में अक्षम पाता है, तब प्रतीक और मिथक उसके समक्ष आकर उसका मार्ग प्रशस्त करते हैं। दुबे जी कुछ भारतीय प्रतीकों के लोक जीवन में अर्थ खोजने की सार्थक कोशिश करते हैं। लेकिन लेखक का ध्येय प्रतीकों की उत्पत्ति कथा पर मौन ही है, और न उनकी वैज्ञानिकता पर सटीक टिप्पणियाँ की गई हैं। जबकि लेखक भूमिका में इनके विश्लेषण को वैज्ञानिक दृष्टि के साथ लोक दृष्टि को आधार मानते हैं। वे स्वयं स्वीकारते हैं कि 'विश्लेषण पद्धति में मेरा ललित निबंधकार मन सक्रिय रहा है। इसलिए इनका संबोधी स्वभाव आत्मीय है।' यहाँ लेखक अपने आपको चतुराई से लेते हैं और वैज्ञानिक विश्लेषण से बच जाते हैं। जबकि आज का वैज्ञानिक युग बिना निरीक्षण, परीक्षण के इनके सच पर सदैव शंका करता आया है। ललित रचनाकार शब्दों के व्यामोह में फँसता जाता है। सिद्ध लेखक सबसे पहले अपनी भाषा को ही ध्वस्त करता है। कबीर इसके उदाहरण हैं।

दुबे जी मानते हैं - 'प्रतीक संरचना की महत्वपूर्ण शक्ति कल्पना में निहित है। मनुष्य कल्पना कर लेता है इसलिए वह रचनासय है यह सत्य कल्पना की उस ऊर्जा की ओर संकेत करता है जिसमें मनुष्य कृत सम्पूर्ण कौशल अपनी अर्थवत्ता प्राप्त कर सका है। प्रतीक कल्पना और यथार्थ का रचनात्मक संश्लेषण है। इनमें निहित यथार्थ तत्व सभ्यता और संस्कृति के यात्रा-पथ के स्मृत प्रसंगों के जटिल बिम्ब होते हैं। ये बिम्ब प्रत्येक समय के समकालिक होने की सामर्थ्य इस रूप में रखते हैं कि ये जीवनगत सत्य उस पक्ष से संबंधित होते हैं- जो चिरन्तन हैं।'

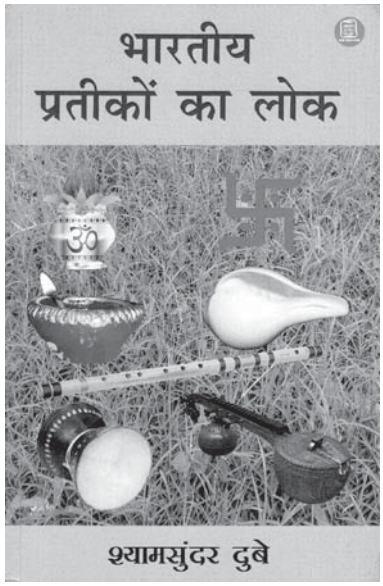

किताब में पच्चीस प्रतीकों पर दुबे जी ने कलम चलाई है। जिनमें बिन्दु, स्वास्तिक, कलश, ओंकार, नाग, तांडव, काम, सूप, कुंभ, शंख, हाथी, दूर्वा, बाँसुरी, दीप, डमरू आदि प्रमुख हैं। प्रतीकों की संपूर्ण पड़ताल लोक परम्पराओं के आधार पर की गई है, इसलिए लोक जीवन की व्याख्या में प्रतीकों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो गई है। निबन्ध में लेखक का ललित निबन्धकार अधिक हावी रहता है। यही कारण है कि दुबे जी की भाषा लालित्य और आलंकारिता ग्रहण करती है। संभवतया ऐसा लेखन को ललित बनाने की बाध्यता हो। अधिक आलंकारिकता के कारण कहीं-कहीं भाषा ललित की बजाय दुरूह हो जाती है। उदाहरण के रूप में दुबे जी लिखते हैं- 'प्रतीक जब अपनी कथा-धर्मिता को गुटिका रूप (नट शैल) में आकृतिवान करता हुआ जटिल और संश्लिष्ट रचना-विधान में पर्यवसित होने लगता है- तब वह मिथक श्रेणी की धारणा का वाहक बन जाता है।' अस्पष्टता जाहिर होती है।

इस किताब की सबसे बड़ी उपलब्धि प्रतीकों का विश्लेषण अत्यधिक व्यावहारिक धरातल पर किया गया है। जिसमें लेखक के निजी अनुभव प्रतीक को जीवन्त करते नजर आते हैं लेकिन लेखक ने भारतीय प्रतीकों की मर्यादा की अथर्वत्ता को नये आशय और आयाम प्रदान किये हैं। इससे पाठक अपने आसपास के प्रतीकों से अनायास जुड़ जाता है और प्रतीकों की मांगलिकता की पावन सुगंध से भर उठता है। पुस्तक सबके लिये पठनीय और संग्रहणीय है। प्रकाशक सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन और लेखक दोनों बधाई के पात्र हैं।

पुस्तक - भारतीय लोक प्रतीक, लेखक- डॉ. श्यामसुंदर दुबे, प्रकाशक- सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- सन् 2017, मूल्य 150/-

- एच-7, उमा विहार, नयापुरा, कोलार रोड, भोपाल-462042

■

पुस्तक समीक्षा

अतएव- साहित्य के सकारात्मक मूल्यों पर विमर्श

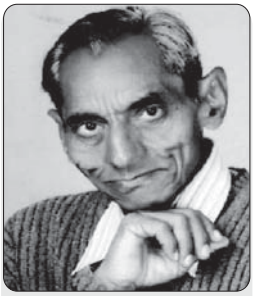

राधेलाल बिजघावने

भारतीय साहित्य व्यापक सकारात्मक मूल्यों की व्यापकता के लिए हमेशा ही गौरव मंडित होता रहा है। इसलिए भी कि इसमें मानवीय जीवन बोध की हित चिन्ताएं रही हैं। क्योंकि तमाम विषाक्त तत्वों से युक्त होकर सामाजिक, राष्ट्रीय, चिन्ता और चिन्तन के साथ मानवीय जीवन के सुखद भविष्य के लिए उत्प्रेरणा की जरूरी पहल समाहित रही है। साहित्य समाज की वाणी रहा है। इसलिए उसकी वाणी में कर्तव्य बोध, संगठानात्मक सहयोग और संबंधों की मिठास घुली रहती है। समय के साथ भारतीय साहित्य में बदलाव होता रहा है क्योंकि इन बदलावों में मानवीय बदलते सोच के यथार्थ बोध की प्रस्तुति होती रही है।

'अतएव' संग्रह में डॉ. बिनय षडंगी राजाराम के ग्यारह महत्वपूर्ण निबंध संग्रहित हैं जो समालोचनात्मक प्रवृति और दृष्टि सचेतन सोच के साथ विकसित करते हैं। जो समाज में समरसता स्थापित करने में सक्रिय पहल करते हैं।

नैसर्गिक समरसता और रामायण लेख में राम को सामाजिक, सांस्कृतिक अस्मिता के व्यापक रूप को प्रस्तुत किया है।

राम, जो राजकुमार थे, का राज्य के लोगों के मन में जन कल्याणकारी, सहयोगी आत्मीय हित चिन्ताएं थीं। इसलिए जंगलों के निवासी संतों के दुख हरण की आशा और उत्प्रेरणा को लेकर वन गये और अपना दायित्व निर्वहन किया। रामायण के पात्र में समरसता स्थापित कर सहयोगी आदर्श संहिता स्थापित करने के लिए प्रतिबध थे। इसलिए राम की मान्यता ईश्वर के रूप में स्थापित हो चुकी। क्योंकि उनका व्यक्तित्व प्रेरणादायक और संकटमोचन का था। घरेलू दुनियां में भाईयों, बहुओं, माता-पिता के बीच समरसता भी उन्होंने स्थापित कर आदर्श चरित्र को महत्व दिया। इसके साथ राक्षसों का वध कर शांति सदभावना स्थापित की।

'प्रकृति संपृक्त भारतीय कर्म' आलेख में डॉ. बिनय षडंगी राजाराम ने प्रकृति के साथ एकात्म भावों को सर्वाधिक महत्व दिया। इसलिए प्रकृति के साथ ईश्वर को जोड़ा। लेख में ईश्वर के विभिन्न अवतारों का उल्लेख कर, समाज में ईश्वर के प्रति आस्था के भाव बोध को विकसित किया तथा राक्षसों के विनास समुद्र मंथन के माध्यम से किया। अहंकारी प्रकृति के विनास को विशेष महत्व दिया।

'वैश्विक परिदृश्य में व्यापक भारतीय आख्यान' लेख में डॉ. बिनय षडंगी राजाराम ने यह उल्लेखित किया कि आख्यान, आख्यलिका, कला वार्ता, गाथा श्रुति, जनश्रुति, किवदंती, दन्त कथा, पुराण कथा, लोक कथा आदि अनेक नामों से प्रचलित है। ये आख्यान विश्व परिदृश्य में व्याप्त है जो पुराण कथा, धर्म कथा, हितोपदेश, बोध कथा, जातक कथा, पंचतंत्र कई रूप में प्रचलित है, जो मानवीय जीवन को कई रूप में प्रभावित कर उनके मन में नई चेतना स्फूर्ति पैदा करते हैं।

'भारतीय वाङ्मय और संदेश परंपरा' आलेख में विदेशी दार्शनिक होरेस तथा लोंजाइनस के विचारों को प्रस्तुत किया गया जिन्होंने भारतीय जीवन दर्शन इतिहास, समाज-संस्कृति, कल्चर आदि के संबंध में अपने मत प्रस्तुत किये हैं। भारतीय साहित्य श्रुतिपाद है। इस तथ्य को स्पष्ट किया। शिलालेखों का लिखना, पत्र लिखना, परंपरा भारतीय धर्म में रही है। निर्गुण सगुण ब्रह्म पर गहन विचार किया है बाण भट्ट कथा के माध्यम से जन मानस को लोकोन्मुखी बनाया गया है।

''हास्य व्यंग्य का शास्त्रीय विवेचन 'लेख में डॉ. बिनय षडंगी राजाराम ने हास्य एवं व्यंग्य की रचनात्मकता के अंतर को स्पष्ट करते हुए- पाँच-छः भेदों को बताया है। हास्य के साथ व्यंग्य के समायोजन पर गंभीरता से विमर्श किया है। हास्य व्यंग्य के भारतीय रचनाकारों के बारे में उनका ध्यान भी केंद्रित किया है।

प्रबुद्ध संत कवि सुन्दरम के साहित्य एवं व्यक्तित्व के बारे में इन्होंने उल्लेख किया है कि ये दादु के शिष्य थे, विद्वान भी थे, समाज में इनकी प्रतिष्ठा थी।

''भारतीय भक्ति परिवेश में विकसित, मुस्लिम साहित्य'' पर बिनय षडंगी राजाराम ने गहन अध्ययन कर यह बताया कि हिन्दु मुस्लिम संस्कृति एक दूसरे को जोड़ने के लिए सक्षम थी। मुस्लिम धर्मावलंबियों ने हिन्दू धर्म दर्शन के महत्व को समझा और अमीर खुसरो, रसखान, गुलाम मुहम्मद इसके उदाहरण हैं।

'प्रेमचंद की लेखकीय ऊर्जा और आस्था' आलेख में प्रेमचंद के उपन्यासों, कहानियों पर गहरा विमर्श किया है और यह स्पष्ट किया है कि लोक मानस को उन्होंने किस तरह प्रभावित किया है।

''स्वतंत्रता आन्दोलन और छायावादी काव्य'' लेख में छायावादी रचनाकारों जैसे - निराला, महादेवी वर्मा, प्रसाद, सुमित्रा नंदन पंत की छायावादी रचनाओं के रचना शिल्प को बारीकी से देखा और उनके बारे में अपना मत प्रस्तुत किया। 'युग प्रवर्तक कवि अज्ञेय' लेख में अज्ञेय के प्रयोगवाद तथा उनके द्वारा प्रकाशित सप्तक का उल्लेख करते हुए हिन्दी साहित्य की विकास यात्रा की विशिष्टता को प्रस्तुत किया है। 'रेणु का चमत्कारी शब्द शिल्प' आलेख में फणीश्वर नाथ रेणु के लोक जीवन पर केन्द्रित रचनाशीलता के बारे में गहन मंथन किया है। इन्होंने लोक साहित्य को समृद्ध किया है और लोगों के रहन सहन, आर्थिक सामाजिक जीवन पर प्रकाश डाला है।

'अतएव' लेख संग्रह के लेखों में डॉ. बिनय षडंगी राजाराम ने रामायण से लेकर फणीश्वर नाथ रेणु तक के बीच हिन्दी के साहित्यकारों की विकास यात्रा, उनमें आये परिवर्तन की भाषा, शिल्प के साथ प्रस्तुत किया है। संग्रह में लोक संस्कृति, लोक प्रकृति पर गहनता से विमर्श है। लोक साहित्य के साथ साहित्य की विकास यात्रा, वादों पर जन अपेक्षा के बारे में भी विशेष रूप से ध्यान केंद्रित किया है। पुस्तक, पाठकों के ज्ञानात्मक संवेदनों को विकसित करती है।

चर्चित कृति- अतएव, लेखिका- डॉ. बिनय षडंगी राजाराम, प्रकाशक- लोक साहित्य प्रकाशन-17 ए, शिवकुटी प्रयागराज, मूल्य: 425 रुपये

- ई-8/73, भरत नगर, शाहपुरा, अरेरा कालोनी, भोपाल

डॉ. धनंजय वर्मा को साहित्यालोचना सम्मान

डॉ. बिनय षडंगी राजाराम के निबंध संकलन 'अतएव' का लोकार्पण

हिन्दी भवन भोपाल के महादेवी सभाकक्ष में 18मई 2019 को अलंकरण-लोकार्पण कार्यक्रम संपन्न हुआ। प्रखर साहित्यालोचक डॉ. धनंजय वर्मा को ''श्री उमावल्लभ षडंगी भाषा-संस्कृति साहित्यालोचना सम्मान-2019'' से अलंकृत किया गया। उन्हें शॉल, श्रीफल, महात्मा गांधी की 150वीं जयंती के प्रतीक स्वरूप 'गांधी पोट्रेट' एवं सम्मान राशि रु. 50 हजार का चेक सादर भेंट किया गया। भोपाल के 'सप्तवर्णी कला साहित्य सृजन शोध पीठ' की ओर से पीठ की निदेशक डॉ. बिनय षडंगी राजाराम ने अपने दिवंगत पिता की स्मृति में इस सम्मान की स्थापना की है। अलंकरण के पूर्व डॉ. बिनय के नव-प्रकाशित निबंध संकलन ''अतएव'' का मंचासीन माननीय विद्वत्जनों ने लोकार्पण किया। तदुपरांत डॉ. स्मृति उपाध्याय ने अलंकृत विभूति के सम्मान में प्रशस्ति-पत्र का वाचन किया और डॉ. रेखा कश्तवार ने डॉ. धनंजय वर्मा का परिचय प्रस्तुत किया।

लोकार्पण एवं सम्मान के उपरांत मंचासीन विद्वान वक्ताओं ने साहित्यसेवी पूर्व सांसद श्रद्धेय श्री कैलाश नारायण सारंग की अध्यक्षता में 'आईसेक्ट' के संस्थापक-निदेशक डॉ. संतोष चौबे, वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. देवेन्द्र दीपक और अ.भा. साहित्य परिषद की पत्रिका ''साहित्य परिक्रमा'' की पूर्व संपादक श्रीमती क्रांति कनाटे (बड़ोदरा) ने अलंकृत-विभूति डॉ. धनंजय वर्मा के योगदान एवं डॉ. बिनय षडंगी राजाराम की पुस्तक 'अतएव' पर विस्तार से विमर्ष किया। तत्पश्चात डॉ. धनंजय वर्मा ने अपना विशेष अलंकृत विभूति-वक्तव्य प्रस्तुत किया। श्रद्धेय श्री कैलाश नारायण सारंग के अध्यक्षीय उद्बोधन के पश्चात् अंत में अखिल भारतीय साहित्य परिषद, भोपाल इकाई के अध्यक्ष श्री राजेन्द्र शर्मा 'अक्षर' ने आभार प्रदर्शित किया। डॉ. अनुपमा चौहान ने कार्यक्रम का सम्यक संचालन किया।

रपट : डॉ. बिनय षडंगी राजाराम

जब हम अच्छा खाने, अच्छा पहनने और अच्छा दिखने में खर्च करते हैं
तो अच्छा पढ़ने-लिखने और सोचने-समझने की खुराक में खर्च क्यों न करें !

कलासमय

प्रबंध संपादक

सम्पर्क- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com

संस्था समाचार 1

पद्मश्री डॉ. वाकणकर जन्मशती समारोह में

ललित कला क्षेत्र की दो विभूतियाँ सम्मानित

महान कला गुरु पर केन्द्रित 'कला समय' के विशेषांक का लोकार्पण

रिपोर्ट : युगेश शर्मा

भोपाल। ललित कला (चित्रकारी) और पुरातत्व के क्षेत्र में भारत का नाम विश्व भर में रोशन करने वाले म.प्र. की उज्जैन नगरी में जन्मे महान कला गुरु डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर की जन्मशती के प्रसंग में कला समय, संस्कृति, शिक्षा और समाज सेवा समिति, भोपाल एवं श्री दशपुर प्राच्य शोध संस्थान, मंदसौर ने संयुक्त रूप से जन्मशती समारोह भोपाल के स्वराज भवन सभागार में प्रख्यात पुरातत्ववेत्ता डॉ. नारायण व्यास की अध्यक्षता मंदसौर के प्राच्य पुराविद् श्री कैलाशचन्द्र घनश्याम पांडेय के मुख्य आथित्य में आयोजित हुआ। समारोह में संस्कार भारती के वरिष्ठ पदाधिकारी और डॉ. वाकणकर के अनन्य साथी पद्मश्री बाबा योगेन्द्र सिंह आमंत्रण पर विशेष रूप से उपस्थित थे। भोपाल के साहित्यकार एवं चित्रकार श्री राजेन्द्र नागदेव विशिष्ट अतिथि के बतौर मौजूद थे। कला समय के संपादक और समिति के सचिव श्री भंवरलाल श्रीवास के संयोजन एवं समिति के अध्यक्ष श्री सज्जनलाल ब्रह्मभट् 'रसरंग' के मार्गदर्शन में संपन्न हुए इस समारोह में डॉ. वाकणकर के काफी निकट रहे और उनके शिष्यगण बड़ी संख्या में शामिल हुए। श्रीवास ने दोनों संस्थाओं की ओर से मंचासीन एवं विशिष्ट अतिथियों का पुष्पगुच्छ से स्वागत किया। सरस्वती जी, डॉ. वाकणकर के चित्रों पर माल्यार्पण के साथ प्रारंभ हुए गरिमापूर्ण समारोह में वरिष्ठ चित्रकार डॉ. राजाराम, श्री नवल जायसवाल तथा ग़ज़लकार श्री राम मेश्राम भी उपस्थित थे। कार्यक्रम के जारी रहते हुए एक समय ऐसा आया जब सारा वातावरण डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर की अप्रतिम कीर्ति से सराबोर हो गया। उपस्थित जनों के संस्मरणों के माध्यम से महान कलागुरु का सहज-सरल और प्रतिभाओं को हर संभव ज्ञान और प्रोत्साहन देकर कला की ऊँचाईयों को छूने योग्य गढ़ने वाला व्यक्तित्व उभर कर सामने आया। समारोह में उपस्थित हर व्यक्ति के पास डॉ. वाकणकर के बारे में स्मृतियाँ थीं। कुछ को अपनी स्मृतियाँ साझा करने का अवसर भी मिला। समारोह का संचालन युवा चित्रकार और कवयित्री श्रीमती अर्चना मुखर्जी ने किया।

'कला समय' के विशेषांक का लोकार्पण

द्वैमासिक 'कला समय' का अप्रैल-मई 2019 का अंक पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर के व्यक्तित्व और केन्द्रित विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ है। संपादक श्री भंवरलाल श्रीवास ने विशेषांक के बारे में अवगत कराया। तत्पश्चात मुख्य अतिथि श्री पांडेय, अध्यक्ष डॉ. व्यास और बाबा योगेन्द्रसिंह ने संयुक्त रूप से विशेषांक का लोकार्पण किया और विशेषांक के लिए सभी अतिथियों ने संपादक श्रीवास जी की भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा कि यह विशेषांक डॉ. वाकणकर और उनके योगदान को विस्तार से समझने में मदद करेगा। अतिथियों का कहना था कि अभी भी बहुत सी सामग्री प्रकाश में आना शेष है। डॉ. वाकणकर से संबंधित जानकारी एकत्रित करने एवं उनके प्रकाशन का क्रम जारी रहना चाहिए। इससे पूर्व अतिथियों का स्वागत करते हुए भी भंवरलाल श्रीवास ने समारोह के प्रस्तावना के बतौर 'कला समय' के उस संपादकीय का वाचन किया, जो विशेषांक में छपा है। आपने कहा कि 'कला समय', संस्कृति, शिक्षा और समाज सेवा समिति और 'कला समय' पत्रिका कला क्षेत्र की विभूतियों पर ऐसे समारोह आयोजित करने और विशेषांक प्रकाशित करने का प्रयास जारी रखेगा।

डॉ. भारती श्रोती और श्री ललित शर्मा सम्मानित

समारोह में समिति की ओर से इतिहासकार डॉ. भारती श्रोती, रायपुर (छत्तीसगढ़) और श्री ललित शर्मा, झालावाड़ (राजस्थान) को शॉल, श्रीफल, स्मृति चिन्ह और पुष्पगुच्छ भेंटकर पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर रजत अलंकरण सम्मान से श्री पांडेय, डॉ. नारायण व्यास और पद्मश्री बाबा योगेन्द्र सिंह ने विभूषित कर बधाई और शुभकामनाएँ दीं। सम्मानित विभूतियों की प्रशक्ति का वाचन श्रीमती अर्चना मुखर्जी ने किया। डॉ. श्रोती और श्री शर्मा ने सम्मान का उत्तर देते हुए समिति को धन्यवाद देते हुए डॉ. वाकणकर और उनके योगदान को श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हुए जन्म शताब्दी के अवसर पर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की। डॉ. भारती श्रोती ने कहा कि डॉ.

वाकणकर जी मेरे लिये पिता से भी बढ़कर थे। उन्होंने अमेरिका से उज्जैन पहुंचकर मेरा कन्यादान किया था। मैंने उन्हीं के मार्गदर्शन में पी.एचडी. की है। वे बहुत अच्छा खाना भी बनाते थे। वे किसी को अपना शिष्य बनाने के पहले खूब परख लिया करते थे। जो उनकी अपेक्षा के अनुसार मेहनत नहीं करता था, वे उसको कला-ज्ञान नहीं देते थे।

सम्मानित श्री ललित शर्मा ने डॉ. वाकणकर के पुरातत्वीय खोज के बारे में विस्तार से चर्चा की। आपने कहा- उन्होंने डाकुओं के बीच रहकर पुरातत्व संबंधी शोध कार्य किया है। उन्होंने पूरे हिन्दुस्तान को खंगाला था। हाड़ोती में उन्होंने खोज का जो काम किया, वह काफी महत्वपूर्ण है। उस काम का पूरा मूल्यांकन होना चाहिए, क्योंकि वाकणकर जी के योगदान में उसका भी हिस्सा है। शाजापुर का काम भी महत्वपूर्ण है। मैंने निस्वार्थ भाव से अधिक से अधिक काम करने का गुण वाकणकर जी से सीखा है।

अतिथि वक्ताओं के वक्तव्य

डॉ. वाकणकर की मानस पुत्री सुश्री पूर्णिमा भटनागर, स्मिता नागदेव और डॉ. रेखा भटनागर समारोह में आमंत्रित वक्ता के बतौर मौजूद थीं। पूर्णिमा भटनागर ने कहा कि डॉ. वाकणकर खाली नहीं बैठते थे। शोध संबंध कोई न कोई काम करते ही रहते थे। देश-विदेश में उनकी विपुल संख्या है। कला-शिक्षा में उन्होंने शिष्यों पर अपनी शैली हावी नहीं होने दी, बल्कि मूल सिद्धांत, मंत्र और मार्गदर्शन प्रदान करने के बाद वे अपने शिष्यों को स्वतंत्र रूप से साधना करने के लिए छोड़ देते थे। वे संस्थाओं के मोहताज नहीं थे, अपितु वे एक संस्था बन गए थे।

डॉ. रेखा भटनागर ने डॉ. वाकणकर की शिष्या के रूप में अपनी स्मृतियां साझा कीं। आपने कहा- उन्होंने अपने प्रयासों से मुझे एक चित्रकार के रूप में विश्व में ख्याति दिलवायी। मैंने गुरुजी के बारे में पुस्तक लिखकर अपनी ओर से उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की है। मेरी बेटी विदुषी को कला के क्षेत्र में आगे बढ़ाने में गुरु जी का बड़ा योगदान रहा है। वे हमारे परिवार के सदस्य जैसे थे। मैंने शब्दांकन से रेखांकन की जो शैली विकसित की है, उसमें भी उन्हीं की प्रेरणा है।

सुश्री स्मिता नागदेव ने अपने वक्तव्य में कहा कि मेरे पिता स्व. सचिदा नागदेव डॉ. वाकणकर के शिष्य थे। इस कारण हमारा पूरा परिवार उनके साथ जुड गया था। मेरे संस्कारों और व्यक्तित्व निर्माण में भी उनकी भूमिका रही है। शोध के मामले में उनकी दृष्टि बहुत सूक्ष्म हुआ करती थी। मेरे पिताजी में वाकणकरजी के प्राय: सारे गुण आ गये थे। भीम बैठका की गुफाओं की खोज के दौरान उन्होंने ऊंची चट्टान पर चढ़कर मुझसे सितार वादन कराया था। मैं काफी डरते हुए चट्टान पर चढ़ी थी। वे अपने शिष्यों को चरैवेति का संदेश देते थे। हमें अपने पुरोधाओं के प्रति मन में आदर भाव रखना चाहिए।

तत्पश्चात विशिष्ट रूप से समारोह में शामिल हुए बाबा योगेन्द्रसिंह ने संबोधित किया। आपने कहा- हम लोग पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर को ''हरि भाऊ'' कहते हैं। वे हमारे ग्रंथों से विषयों का पता लगाकर उन पर खोज करते थे। बड़ी से बड़ी मेहनत करने से वे पीछे नहीं हटते थे। कंदराओं में जा-जाकर भी खोज करते थे। वस्तुत: वे जन्मजात खोजी स्वभाव के थे। काल गणना में वे विजयक थे। उन्होंने सारे विश्व का भ्रमण कर पुरातत्व संपदा की खोज की। मैं नई पीढ़ी से आग्रह करता हूँ कि वह खोजी स्वभाव लेकर आगे बढ़ें। इस काम में विश्व विद्यालयों का सहयोग भी लिया जाए। उज्जैन जिले के 50 गांवों में हरिभाऊ की गाथाएँ लिखी हुई हैं। इनको संकलित किया जाना चाहिए। ये गाथाएँ लोगों तक पहुँचना चाहिए।

समारोह के विशिष्ट अतिथि श्री राजेन्द्र नागदेव ने कहा कि उनका परिवार डॉ. वाकणकर के बहुत निकट रहा है। मेरे अग्रज स्व. सचिदा नागदेव तो उनके प्रथम शिष्य थे। डॉ. वाकणकर केवल चित्रकार और पुरातत्ववेत्ता ही नहीं थे, वे एक स्वतंत्रता संग्राम सेनानी भी थे। उन्होंने 1942 के आंदोलन में भाग लिया था। गोआ मुक्ति आंदोलन में भी उनकी भागीदारी थी। दुनिया की ऐसी कोई चीज नहीं थी, जिसके बारे में उनको जानकारी न रही हो। वे विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। मैंने 1953 में उज्जैन में उनको प्रथम बार देखा था। वे सुदर्शन व्यक्तित्व वाले थे। मैं भी 8-9 वर्ष की उम्र में उनके संपर्क में आ गया था। जब भी वे दिल्ली आते थे, तो हमारे यहां ही ठहरते थे। वे रात्रि में हमारे बेटे को लोरी सुनाकर सुलाया करते थे। कला भवन, उज्जैन के विद्यार्थी कहीं भी बसे हों, उनको प्रोत्साहित करने के लिए सदा तत्पर रहते थे।

मुख्य अतिथि श्री कैलाशचन्द्र घनश्याम पांडेय ने अपने उद्बोधन में कहा कि मेरा उनके साथ पारिवारिक संबंध था। मैं एक प्रकार से उनका निजी सेवक ही था। मैंने उन्हीं के प्रोत्साहन से तीन विषयों में एम.ए. किया था। शैल चित्रों पर उनकी चार पुस्तकें

प्रकाशित हो चुकी हैं। उन्होंने विश्व के 87 देशों में शैल चित्र खोजने का अद्वितीय काम किया है। उन्होंने अपनी खोजों के बारे में बड़े अखबारों के साथ-साथ आंचलिक छोटे अखबारों में भी छपवाया था। वे पुरातात्विक खोजों के साथ आम लोगों को भी जोड़ना चाहते थे। इस भ्रम को मिटाने के लिए भी प्रयत्नशील थे कि निश्चित स्थान पर जमीन में खुदाई केवल धन प्राप्त करने के लिए ही की जाती थी। वे लोगों को बताना चाहते थे कि ऐसी खुदाई मूल रूप से मूल्यवान पुरा संपदा की खोज के लिए की जाती है। 1986में वाकणकर जी ने निजी पूंजी से अन्वेषण न्यास की स्थापना की थी।

अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में डॉ. नारायण व्यास ने डॉ. वाकणकर की पुरातत्वीय शोध उपलब्धियों पर विस्तार से प्रकाश डाला। आपने कहा- मुझे पुरातत्व विषय में एम.ए. कराने और फिर विषय के अनुरूप नौकरी दिलवाने में उन्हीं की निर्णायक भूमिका रही है। वे अपने बेरोजगार शिष्यों को कहीं न कहीं काम दिलवा देते थे। मैंने भीम बैठका की गुफाओं के सर्वेक्षण एवं दस्तावेजीकरण के काम में उनकी मदद की थी। वे मालवी बहुत अच्छी बोलते थे। मैं जीवन भर डॉ. वाकरणकर का ऋणी रहूँगा। मैं तो अब भी उनसे प्रेरणा और शक्ति प्राप्त करता हूँ। मैं 1972 से 1982 तक उनके साथ लगातार सम्पर्क में रहा हूँ।

समारोह में प्रख्यात कवि श्री राग तेलंग, वरिष्ठ चित्रकार द्वय डॉ. राजाराम और श्री नवल जायसवाल एवं कुछ श्रोताओं ने भी अपने विचार और संस्मरण साझा किये।

'कला समय', संस्कृति, शिक्षा और समाज सेवा समिति की कार्यकारिणी के सदस्य युगेश शर्मा ने सभी अतिथियों के प्रति आभार व्यक्त करते हुए कहा कि समिति ने अपने पुरोधाओं को स्मरण करने की जो परंपरा प्रारंभ की है, वह आगे भी जारी रहेंगी और कला-क्षेत्र की विशिष्ट विभूतियों को इसी प्रकार सम्मानित भी किया जाएगा। आपने श्री दशपुर प्राच्य शोध संस्थान, मंदसौर के प्रति भी इस बात के लिए कृतज्ञता व्यक्त की कि उसके सहयोग से समिति डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर की जन्मशती पर समारोह आयोजित करने में सफल हुई।

- 'व्यंकटेश कीर्ति' 11, सौम्या एन्क्लेव एक्सटेंशन, चूना भट्टी, भोपाल-462016, मो. 9407278965

संस्था समाचार 2 **काव्य प्रसंग**

भारतीय संस्कृति चेतना के मूल की पहचान है पयोधि का काव्य

भोपाल। ''पयोधि का काव्य अपनी सहज बुनावट और बनावट के साथ हमें गहरे दर्शन की ओर ले जाता है। यह कवि जनजातीय जीवन की सहज क्रियाओं के माध्यम से सांस्कृतिक मूल्यों की वास्तविक समझ से परिचित कराता है। एक वाक्य में कहें तो भारतीय सांस्कृतिक चेतना के मूल की पहचान है पयोधि का काव्य।'' यह बात प्रतिष्ठित कवि लक्ष्मीनारायण पयोधि के कविता-कर्म की चर्चा करते हुए वरिष्ठ चिंतक-कवि और राजनीतिक भूपेन्द्र गुप्ता 'अगम' ने कही। वे कला समय संस्कृति, शिक्षा और समाज सेवा समिति, रौनक सोशल एण्ड कल्चरल सोसाइटी एवं वन्देमातरम् उत्सव समिति के संयुक्त तत्वावधान में शुक्रवार को स्वराज भवन संस्थान में आयोजित काव्य-प्रसंग कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि के रूप में बोल रहे थे। अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में वरिष्ठ कवि ओम भारती ने लक्ष्मीनारायण पयोधि के काव्य के मौलिक गुणों की चर्चा करते हुए उन्होंने अपना एक अलग रास्ता बनाने वाला कवि बताया। श्री भारती ने इस बात का विशेष रूप से उल्लेख किया कि अपने समय का एक बड़ा कवि होने के बावजूद किसी साहित्यिक गुट में शामिल न होने के कारण उनकी चर्चा इस तरह से नहीं हुई, जिसके वे हकदार हैं।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि वरिष्ठ रंगकर्मी संजय मेहता ने पयोधि की कविता 'सुखमती' की पंक्तियों का उल्लेख करते हुए कहा कि यह कविता गौरक्षा को नारे की तरह इस्तेमाल करने वालों के मुँह

पर तमाचा है। पयोधि की 'छितरे वालों वाली सुखमती' तो रोज़ सुबह उठकर धौरी गाय के पीछे टोकना लेकर इतने आस्थाभाव से खड़ी होती है, मानो अंजुरी में पुष्प लेकर मंदिर में खड़ी हो। वह गाय के उस पवित्र गोबर को ज़मीन पर भी नहीं गिरने देना चाहती, जिससे वह घर-आँगन और पूजा की कोठरी लीपकर छुई, गेरू, हल्दी और कुमकुम से सजाती है। वास्तव में यह है भारतीय संस्कृति में गाय का सम्मान और उसका सांस्कृतिक मूल्य। श्री मेहता ने रंगकर्मी ज्योति दुबे के संयोजन में उनकी टीम के कलाकारों द्वारा प्रस्तुति के लिये चयनित पयोधि जी की कविताएँ हर दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। उल्लेखनीय है कि इस कार्यक्रम में प्रायोगिक तौर पर युवा रंगकर्मी मुकुल कुमार त्रिपाठी, लता साँगड़े, कुसुम शास्त्री, सुशीलकांत मिश्रा, कशफ खान, विभा परमार और ज्योति दुबे ने कवि लक्ष्मीनारायण पयोधि की चार दशक से भी अधिक समय में रचे गये सोलह काव्य संकलनों में से 'सोमारू के बारे में', 'सुखमती', 'फूल को सूँघने का अर्थ', 'वह तिरछी मुस्कान', 'फर्क तो पड़ता है', 'ऐसा आयेगा अवश्य एक दिन' आदि कविताओं का पाठ किया गया, जिन्हें श्रोताओं ने ख़ूब सराहा। आरंभ में कवि पयोधि ने भी चर्चा के लिये प्रस्तुत अपनी **तीनों पुस्तकों, क्रमशः 'समय का नाद', 'ख़यालों की धूप' और 'हवा के परों पर' से दो-दो रचनाओं** का पाठ किया।

विमर्श की शुरुआत करते हुए प्रसिद्ध ग़ज़लकार महेश अग्रवाल ने पयोधि के ग़ज़ल संग्रह '**हवा के परों पर**' के बारे में अपना मंतव्य प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि 'देश के अनेक प्रतिष्ठित ग़ज़लकारों ने अपने अवदान से हिन्दी ग़ज़ल को समृद्ध प्रतिष्ठित और सर्वव्यापी बनाया है। हम उसी समृद्धि की श्रृंखला में भाई लक्ष्मीनारायण पयोधि को भी जोड़कर देखते हैं। उनका शेर है : **वसीयत भी अलग मैं क्या लिखूँगा/ग़ज़ल के रास्ते जाना मुझे है**। पयोधि जी ग़ज़ल यूँ ही नहीं कहते, उनके पास ग़ज़ल का एक फार्मेट भी है, कहन भी है और सलीक़ा भी है। वे संवेदनशील अनुभूतियों के साथ ग़ज़ल कहते हैं, जिसमें परंपरा भी है और मौलिकता भी। ज़िन्दगी को बहुत नज़दीक से देखने का उनका अपना एक अलग नज़रिया है। वे कभी भी शब्दों का आडम्बर नहीं रचते। सहज-सरल ढंग से अपनी बात कहते हैं, किन्तु गहरे पैठकर मोती निकाल लाना उन्हें अच्छी तरह आता है।'

विमर्श के क्रम को आगे बढ़ाते हुए अध्येता ग़ज़लकार डॉ. किशन तिवारी ने पयोधि के अन्य ग़ज़ल संग्रह '**ख़यालों की धूप**' पर अपने विचार रखे। उन्होंने कहा कि ''पयोधि की ग़ज़लों में विविधता के कई आयाम खुलते हैं। वे अपने समय के प्रति सजग खड़े रहकर चीजों और घटनाओं पर सावधानीपूर्वक पैनी दृष्टि रखते हैं। उनकी ग़ज़लों में सामाजिक बोध और प्रतिबद्धता को महसूस किया जा सकता है। पयोधि के ही शब्दों में : **वो ग़ज़ल में हर्फ़ कुछ ऐसे बिठाता है/कर रहा हो महल की तामीर जैसे**। किशनजी के अनुसार 'ख़यालों की धूप' की ग़ज़लों में समाज की संवेदनाओं को समग्रता में पकड़कर विघटन से बचाने की चिंता दिखाई देती है।''

विमर्श की अंतिम कड़ी में पयोधि के कविता संग्रह '**समय के नाद**' का समग्रता में विश्लेषण करते हुए सुपरिचित कवि-लेखक लक्ष्मीकांत जवणे ने इस संग्रह की कविताओं के दार्शनिक, आध्यात्मिक और सामाजिक तत्वों का खुलासा किया। उन्होंने कहा कि ''इसके कथ्य ने इसे जिम्मेदार कृति बनाया है। इसमें रस का अद्यतीकरण और उन्नयन एक साथ उपस्थित है। इसमें लोकमंगल और लोकरुचि के साथ कोई खिलवाड़ नहीं है। भारतीय मन को किसी आयातित विचार से सांत्वना देने की चेष्टा नहीं है। यह संग्रह घर और मन के गर्भगृहों में स्थान पाने में सक्षम है, जिसके आलोक में जीवन को यथार्थ रूप में देखा जा सकता है।''

काव्य-प्रसंग के इस अभिनव कार्यक्रम को कुशलतापूर्वक संचालित किया वरिष्ठ कथाकार-आलोचक युगेश शर्मा ने। कृज्ञता-ज्ञापन 'कला समय' संस्था के संस्थापक सचिव भँवरलाल श्रीवास ने किया। इस अवसर पर लक्ष्मीनारायण पयोधि की पुस्तकों, दुर्लभ छायाचित्रों और उराँव चित्रकार-शिल्पी आग्नेश केरकेट्टा के मुखौटे एवं अन्य शिल्पों का संयोजन-प्रदर्शन युवा रंगकर्मी ज्योति दुबे द्वारा किया गया। कार्यक्रम में बड़ी संख्या में वरिष्ठ साहित्यकारों, कलाकारों और चिंतकों की उल्लेखनीय उपस्थिति रही।

– भँवरलाल श्रीवास

गिरीश कर्नाड

जन्म : 19 मई 1938 | निधन : 10 जून, 2019

विनम्र श्रद्धांजलि

देश के जाने-माने लेखक, अभिनेता, फिल्म निर्देशक और रंगकर्मी, गिरीश कर्नाड को चार बार फिल्म फेयर अवार्ड, पद्मश्री, पद्म भूषण, ज्ञानपीठ सहित म.प्र. शासन का कालिदास सम्मान से नवाजा गया। आप भारत भवन के रंगमंडल के दौरान भोपाल से जुड़े रहे तथा ब.व कारंत से घनिष्ठ मित्रता थी। आपका पहला नाटक भारत भवन के स्थापना काल 1982-83 में ब.व. कारंत के निर्देशन में हयवदन का मंचन हुआ था। आप लंबी बीमारी के बाद बेंगलुरू में अंतिम साँस ली। आप 81 वर्ष के थे।

कला समय परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि...

समवेत

सेन्ट्रल एकेडमी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, कोटड़ा, अजमेर में पुस्तक विमोचन

अजमेर। दिनांक 14.05.2019 को सेन्ट्रल एकेडमी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, कोटड़ा, अजमेर में पुस्तक विमोचन का आयोजन किया गया। मुख्य अतिथि अतिरिक्त जिला कलेक्टर माननीय अरविन्द कुमार सेंगवा, विशिष्ट अतिथि अधिष्ठाता शिक्षा संकाय आर.आई. ई. अजमेर एवं विभागाध्यक्ष शोध संकाय म.द.स. विश्वविद्यालय अजमेर प्रोफेसर नागेन्द्र सिंह एवं विशिष्ट अतिथि विभागाध्यक्ष पर्यावरण विभाग एवं अधिष्ठाता विज्ञान संकाय म.द.स. विश्वविद्यालय अजमेर प्रोफेसर प्रवीण माथुर, अध्यक्षा सेन्ट्रल एकेडमी एज्यूकेशन सोसायटी अजमेर माननीया डॉ. शोभा सुमन मिश्रा एवं सचिव सेन्ट्रल एकेडमी एज्यूकेशन सोसायटी अजमेर, श्री आरूष टी.एन. मिश्रा जी एवं प्राचार्या सेन्ट्रल एकेडमी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, डॉ. वर्षा नालमें द्वारा कार्यक्रम का शुभारंभ माँ सरस्वती के समक्ष दीप प्रज्ज्वलित कर किया गया पुस्तक का विमोचन। पुस्तक का शीर्षक ''वैश्वीकरण का भारतीय शिक्षा पर प्रभाव, मुद्दे एवं चुनौतियां'' था। पुस्तक में विभिन्न राज्यों के 50 सहभगियों के लेख प्रकाशित किये गये यह लेख वैश्वीकरण का समाज, संस्कृति, शिक्षा, मीडिया एवं शैक्षिक तकनीकी पर प्रभाव का उल्लेख किया गया है। पुस्तक विमोचन के कार्यक्रम में मुख्य अतिथि अरविन्द कुमार सेंगवा ने इस पुस्तक के सन्दर्भ में कहा कि पुस्तक का संकलन वर्तमान युवा पीढ़ी के लिये लाभदायक रहेगा। कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि प्रोफेसर नागेन्द्र सिंह ने पुस्तक के शीर्षक को वर्तमान समय का ज्वलंत मुद्दा बताया और कहा कि यह पुस्तक हमारे शिक्षार्थियों और समाज के लिये उत्कृष्ट संकलन है। विशिष्ट अतिथि प्रोफेसर प्रवीण माथुर ने संस्था की अध्यक्षा महोदया एवं प्राचार्या महोदया को धन्यवाद एवं बधाई दी। व्याख्याता डॉ. भागचन्द बालोत द्वारा मुख्य अतिथि एवं विशिष्ट अतिथियों का आभार एवं धन्यवाद ज्ञापित किया गया। पुस्तक अमेजन वेब साईट पर ऑनलाईन विक्रय हेतु उपलब्ध है।

बंशीधर 'बंधु' का देवास में सम्मान

देवास, दिनांक 7 जुलाई 2019 ''श्री लक्ष्मी बाबूलाल परमार्थिक ट्रस्ट देवास'' द्वारा साहित्यकारों का सम्मान एवं काव्य गोष्ठी का आयोजन वरिष्ठ नागरिक संस्था के नव श्रृंगारित हॉल में किया गया।

देवास नगर के गौरव कलागुरु श्री राजकुमार जी चन्दन ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की। मुख्य अतिथि श्री मानक शाह साहित्यकार इन्दौर, विशेष अतिथि श्री शंकर कलाकार जी वरिष्ठ साहित्यकार महू, श्री रामलाल प्रजापति पत्रकार एवं सम्पादक महू, श्री बंशीधर जी बन्धु मालवी साहित्यकार शुजालपुर मंच पर उपस्थित थे। गीतकार श्री देवकृष्ण व्यास जी द्वारा माँ सरस्वती की वन्दना की गई। तत्पश्चात कार्यक्रम के संयोजक एवं प्रमुख ट्रस्टी श्री शशिकान्त जी यादव द्वारा कार्यक्रम की भूमिका के साथ ही अतिथि परिचय कराया गया। साथ ही श्री शंकर कलाकार, श्री मानक जी शाह, श्री रामलाल प्रजापति, श्री बंशीधर जी बन्धु का शॉल श्रीफल, पुष्पहार एवं प्रतीक चिन्ह देकर सम्मान किया गया। स्वागत भाषण संस्था सचिव सुरेन्द्र सिंह राजपूत हमसफ़र द्वारा पढ़ा गया, ये काव्य गोष्ठी नगर के सुप्रसिद्ध कवि स्व. दादा मदनमोहन व्यास को समर्पित थी। इस सफलतम आयोजन की बधाई दी। श्री मानक शाह जी व श्री रामलाल प्रजापति ने भी अपने उद्बोधन में कार्यक्रम की सराहना की। काव्य गोष्ठी, मैं इन्दौर, महू, नागदा, शुजालपुर, हाटपिपल्या, तराना, नान्देल व देवास के 45 कवि, शायरों ने इस काव्य गोष्ठी को अपनी श्रेष्ठतम रचनाओं से यादगार बनाया। श्री मानक शाह, बंशीधर जी बन्धु, प्रभाकर शर्मा, ओंकारेश्वर जी गहलोत, देवकृष्ण जी व्यास, जय प्रकाश तिवारी, विक्रम सिंह गोहिल, कैलाश सोनी सार्थक, श्रीमती प्रतिभा चन्द्र, मोना गुप्ता, डॉ. मनोरमा जैन, डॉ. अजित जैन, चेतन उपाध्याय, देव निरंजन, मोईन खान, इश्माईल नज़र, अज़ीज़ रोशन, ओम प्रकाश यादव, सुनील गाईड, मुरलीधर मान्यधन्य, मनोहर कराड़ा, हरिशंकर पाटीदार, गुलाब सिंह राजावत, बलराम बल्लू, राज बैरागी, शुभम जैन, मक़सूद शाह, डॉ. इक़बाल मोदी, यशवंत पाटीदार सिंघम, राजेश चौधरी, राधेश्याम पांचाल, विजय जोशी, नरेन्द्र नवगोत्री, दिलीप मांडलिक, जयप्रकाश, धीरज साहा, पलक मेहता, संदीप कुमार, आदि कवियों ने रचना पाठ किया। श्री शंकर कलाकर के गीतों से कार्यक्रम का समापन हुआ। संचालन गीतकार विनोद मण्डलोई ने किया। आभार प्रभाकर शर्मा ने किया।

रिपोर्ट- सुरेन्द्र सिंह राजपूत 'हमसफ़र' देवास

बुन्देली समारोह-2019

पद्मश्री कैलाश मड़बैया को ''कीर्ति कलश कैलाश''

शहीद भवन भोपाल के गरिमापूर्ण समारोह में मध्य प्रदेश की वरिष्ठ संस्कृति मंत्री डॉ. विजय लक्ष्मी साधौ ने साहित्यकार पद्मश्री कैलाश मड़बैया के 75 वर्ष पूर्ण होने पर देश के साहित्य जगत की ओर से उन्हें अभूतपूर्व 'कीर्ति कलश कैलाश' हीरक जयन्ती अभिनन्दन ग्रंथ समर्पित करते हुये कहा कि ऐसा संग्रहणीय साहित्यिक सम्मान ग्रंथ, देश के सर्वोच्च पद्मश्री अलंकरण के उपरान्त श्रमण संस्कृति की महान साहित्यिक धरोहर का प्रतीक है। श्री कैलाश मड़बैया को प्राप्त पद्म अलंकरण बुन्देली भाषा या बुन्देलखण्ड के लिये ही नहीं वरन् देश की समस्त संस्कृति और भाषाओं के सृजन के लिये सम्मानित किया गया। उक्त अमृत महोत्सवी राष्ट्रीय अधिवेशन के अध्यक्ष म.प्र. के वाणिज्यिक मंत्री श्री बृजेन्द्र राठौर रहे जिन्होंने कवि कैलाश मड़बैया के साहित्यिक योगदान को अभूतपूर्व बताया, उन्होंने मड़बैया जी के अमृत महोत्सव पर कविता भी सुनाई। 15 नर्तकियों ने रोमांचक राई नृत्य का प्रदर्शन किया। बुन्देली के राष्ट्रीय कवि सम्मेलन में लगभग 51 नामी गिरामी कवियों ने काव्य पाठ किया। इनमें गीतकार सत्यनारायण तिवारी टीकमगढ़, देवदत्त छतरपुर, उमादेव पन्ना, रामसहाय सागर, भंवरलाल श्रीवास संपादक कला समय, शील शास्त्री ललितपुर, मनोज मधुर, अभिनन्दन गोइल इन्दौर, लखनऊ के अश्क, झाँसी के प्रताप दुबे, बाँदा के लखन, दिल्ली से रजनीश, कुण्डेश्वर के दुर्गेश दीक्षित, डॉ. जवाहर द्विवेदी राघौगढ़, डॉ. ब्रजेश गुप्ता गुना, किशन तिवारी, योगेश दीक्षित, लता स्वरांजलि, गौरीश शर्मा, बिहारी लाल अनुज आदि भोपाल, राजेश गढ़कुडार, अमित चितवन ग्वालियर दतिया से कामिनी, उमादेव, बी.के. नायक पन्ना, स्वामीशरण बानपुर, देवदत्त छतरपुर, प्रताप झाँसी, प्रेम प्रकाश चौबे कुरवाई, रामकृष्ण याज्ञिक रायसेन, पूरनचन्द्र गुप्ता आदि। इसके साथ ही 31 साहित्यकारों ने अपने शोध आलेख भी प्रस्तुत किये। समारोह में लखनऊ, ग्वालियर, दिल्ली, जबलपुर, झाँसी, सागर आदि जिलों के प्रमुख कवियों और लेखकों ने साहित्यिक भागीदारी की।

गयाप्रसाद रावत पत्रकार स्मृति संस्थान का व्याख्यान एवं सम्मान समारोह

प्रसिद्ध पत्रकार स्व. गया प्रसाद रावत की स्मृति में ''बदलते राजनैतिक परिवेश में मीडिया की भूमिका'' विषय पर व्याख्यान एवं सम्मान समारोह का आयोजन 24 जून को स्वराज भवन में किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री रघु ठाकुर ने कहा कि आज की पत्रकारिता में मूल्यों और विचारों का नितांत अभाव है। कार्पोरेट मीडिया न्यूज को अपने तरीके से पेश कर रहा है जिसमें सामाजिक चिंतन का आभाव है। आज के युवाओं में पहले के जैसा संघर्ष देखने को नहीं मिलता। कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि दैनिक नई दुनिया के प्रबंध संचालक डॉ. सुरेन्द्र तिवारी ने पत्रकारिता के क्षेत्र से आये महत्वपूर्ण परिवर्तनों और बदलते राजनैतिक परिवेश का उदाहरण देते हुये भावी पत्रकारों को समझाया कि क्यों पत्रकारिता के मूल्यों को बनाये रखना समाज की बेहतरी की दिशा में एक अच्छा प्रयास है। वहीं कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि सुबह सवेरे के प्रधान संपादक श्री उमेश त्रिवेदी ने अपने वक्तव्य में कहा कि आज बाजारवाद और अन्य ताकतों से मीडिया के मूल्य अपने न्यूनतम स्तर पर पहुँच गये हैं। साहित्यकार पी.डी. मिश्रा ने कहा कि पत्रकार सच्चे अर्थों में समाज का दर्पण हो सकता है। कार्यक्रम में पत्रकारिता, जनसम्पर्क एवं साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान देने वालों को सम्मानित किया गया। इनमें पत्रकारिता के क्षेत्र में पीपुल्स समाचार के संपादक श्री राजीव अग्निहोत्री, दैनिक जागरण के न्यूज एडिटर श्री जगदीश द्विवेदी, सुदर्शन न्यूज के स्टेट ब्यूरो हेड श्री भारत शास्त्री, प्रदेश टुडे के एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्टर श्री राज कुमार मिश्रा, जनसंपर्क के क्षेत्र में मध्य क्षेत्र विद्युत वितरण कंपनी के वरिष्ठ जनसम्पर्क अधिकारी श्री मनोज द्विवेदी और साहित्य के क्षेत्र में समावर्तन के संपादक श्री मुकेश वर्मा का सम्मान किया गया। कार्यक्रम में स्वागत भाषण सचिव श्री प्रदीप रावत ने दिया। संस्था के अध्यक्ष डॉ. विश्वास तिवारी, उपाध्यक्ष श्री कैलाश रावत, सचिव श्री प्रदीप रावत ने अतिथियों का स्वागत किया। गया प्रसाद रावत जी की पुत्री अर्पिता रावत ने अंत में आभार व्यक्त किया।

'कला समय' के संपादक को
दिल्ली का राष्ट्रीय विशिष्ट साहित्यकार सम्मान

2 जुलाई 2019 ''समर्पण भवन'' विकासपुरी नई दिल्ली द्वारा डॉ. निर्मल वालिया के अभिनन्दन ग्रंथ के लोकार्पण समारोह में चैन्सन ग्रैण्ड वेस्टेण्ड होटल जी-6, कम्यूनिटी सेटर पी.वी.आर. विकासपुरी नई दिल्ली के समारोह में देश के विभिन्न राज्यों से पधारे साहित्यकार, सम्पादकों के इस समागम आयोजन में राष्ट्रीय सम्मान समारोह में 'कला समय' पत्रिका के सम्पादक भँवरलाल श्रीवास को राष्ट्रीय विशिष्ट साहित्यकार सम्मान से सम्मानित किया गया। समारोह में मुख्य अतिथि प्रो. सुधा बालकृष्णन, केन्द्रीय विश्वविद्यालय केरल अध्यक्ष, प्रो. विजय महादेव गाडे बाबा साहेब चितले महाविद्यालय मिलड़ी महाराष्ट्र, मुख्य वक्ता प्रो. वृषाली सुभाष मान्द्रेकर गोवा विश्वविद्यालय, गोवा, सारस्वत अतिथि प्रो. मंजु रानी सिंह, विश्वभारती, शांतिनिकेतन, अभिनंदन ग्रंथ संपादक प्रो. अमरसिंह वधान, प्रो. एमरिट्स डी.लिट् चंडीगढ़, कवयित्री एवं लेखिका डॉ. निर्मल वालिया, नई दिल्ली विशेष रूप से उपस्थित थे। मंच संचालन डॉ. रेशमी पांडा मुखर्जी कोलकाता ने किया इस गरिमापूर्ण राष्ट्रीय सम्मान समारोह में सभी विद्वान साहित्यकारों सम्पादकों का शाल, स्मृति चिन्ह, प्रशस्ति पत्र और निर्मल वालिया का अभिनंदन ग्रंथ देकर विशिष्ट साहित्यकार सम्मान से सम्मानित किया गया। इस समारोह में डॉ. निर्मल वालिया का सम्मान भी साहित्यकारों ने किया।

●●●

विश्व रंग का प्रतीक चिन्ह जारी

TAGORE INTERNATIONAL LITERATURE & ARTS FESTIVAL
विश्व रंग
7-10 NOVEMBER, 2019 BHOPAL (INDIA)

विश्व रंग

टैगोर अंतर्राष्ट्रीय साहित्य एवं कला महोत्सव

हिंदी और भारतीय भाषाओं पर केंद्रित अंतर्राष्ट्रीय साहित्य एवं कला उत्सव. विश्व भर के 30 देशों के 100 से अधिक लेखक, रचनाकार, नाटक, कला एवं फिल्म से जुड़े कलाकार, देशभर में 10,000 से अधिक प्रतिभागी, 50 से अधिक सत्र, नोबल विजेता, बुकर सम्मान विजेता, साहित्य अकादेमी एवं पद्म पुरस्कारों से सम्मानित रचनाकार, विश्वभर से विश्वविद्यालयों के प्रोफेसर एवं छात्र. टैगोर के कविता, चित्रांकन, कथा एवं नाटक पर केंद्रित पूर्वरंग, वैश्विक और भारतीय भाषाओं के साहित्य पर केंद्रित चार दिन, हिंदी के 600 से अधिक कथा लेखकों को शामिल करते 'कथादेश' का लोकार्पण, पुस्तक एवं कला प्रदर्शनियाँ, नाट्य प्रदर्शन, लोकरंग, पुस्तक यात्रा एवं चुनिंदा पुस्तकों पर चर्चा, राष्ट्रीय वनमाली कथा सम्मान, और भी बहुत कुछ.

रबिंद्रनाथ टैगोर यूनिवर्सिटी का उपक्रम

संपर्क :
संतोष चौबे - choubey@aisect.org
लीलाधर मंडलोई - leeladharmandloi@gmail.com
मुकेश वर्मा - vermamukesh71@gmail.com

कला समय
कला, संस्कृति और विचार की द्वैमासिक पत्रिका

आगामी
100 वाँ अंक

सांस्कृतिक भूमिका के
सार्थक 22 वर्ष....

निवेदन
आगामी अंक के लिए
अपनी रचनाएँ,
आलेख तथा चित्र
आमंत्रित है...

-सम्पादक

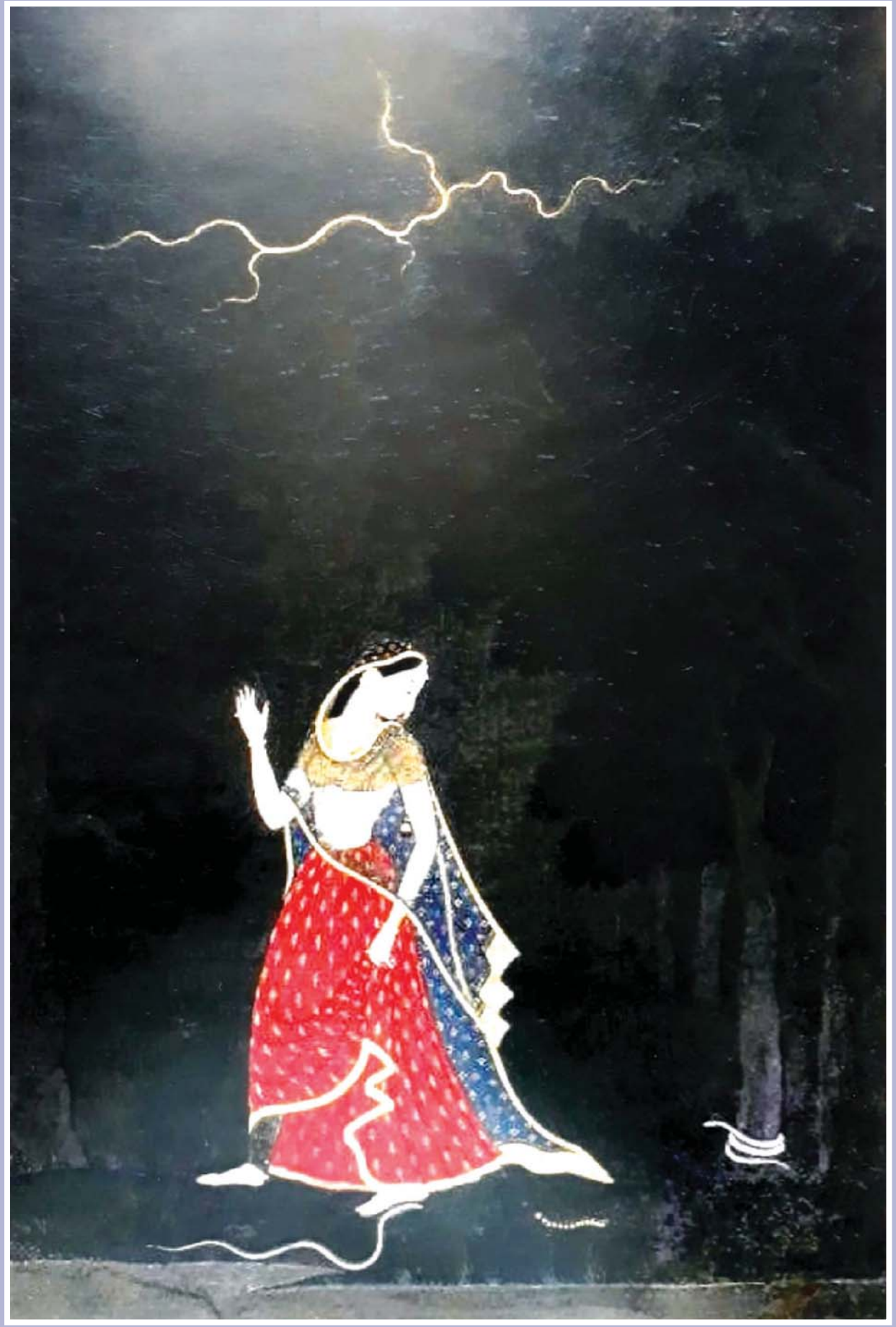

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा दृष्टि ऑफसेट, 36-37, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन नं-1, एम.पी. नगर, भोपाल से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक-भँवरलाल श्रीवास